शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज

विशेष सन्दर्भ 'केशर कस्तूरी'

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

नुनिता राई

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

मार्च – 2017

शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज

विशेष सन्दर्भ 'केशर कस्तूरी'

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

नुनिता राई

पं. सं. 15/M.Phil/HND/01, दिनांक 16/05/2016

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज

विशेष सन्दर्भ 'केशर कस्तूरी'

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध- निर्देशक
दिनेश साहू
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग

अनुसंधित्सु
नुनिता राई
पं. सं. 15/M.Phil/HND/01

हिंदी विभाग
भाषा और साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज

विशेष सन्दर्भ 'केशर कस्तूरी'

अनुसंधित्सु

नुनिता राई

पं. सं. 15/M.Phil/HND/01, दिनांक 16/05/2016

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : नुनिता राई

शिक्षा : एम. ए. (हिंदी)

विभाग : हिंदी

लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक : **शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज**

विशेष सन्दर्भ 'केशर-कस्तूरी'

प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि : 23.07.2015

शोध प्रस्ताव की संतुति :

(i) पंजीकरण संख्या : 15/MPhil/HIN/01

(iii) पंजीकरण तिथि: 16.05.2016

अध्यक्ष
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	**I-VI**
अध्याय	
प्रथम अध्याय : समकालीन कहानी और शिवमूर्ति : स्वरूप विवेचन	**1-41**
1. क. समकालीन कहानी : सामान्य परिचय	
1. ख. समकालीन कहानी : प्रमुख प्रवृत्तियाँ	
1. ग. शिवमूर्ति : व्यक्तित्व और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय	
द्वितीय अध्याय : समकालीन हिंदी कहानी एवं समाज	**42-58**
2. क. समकालीन समाज का स्वरूप	
2. ख. समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित समाज	
तृतीय अध्याय : शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज के विविध आयाम	**59-91**
3. क. वर्ण और जाति	
3. ख. पारिवारिक व्यवस्था	
3. ग. ग्रामीण तथा नगरीय जीवन	
3. घ. स्त्री-पुरुष सम्बन्ध	
चतुर्थ अध्याय : शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज का वैशिष्ट्य	**92-123**
4. क. जाति	
4. ख. स्त्री	
4. ग. राजनैतिक चेतना	
4.घ. आर्थिक स्थिति	
5.ड. ग्रामीण जीवन का प्रामाणिक यथार्थ	
उपसंहार :	**124-128**
संदर्भ ग्रंथ सूची :	**129-130**

प्राक्कथन

साहित्य समाज का निर्देशक है और समाज साहित्य का। दोनों एक दूसरे के नियामक हैं। दोनों में से किसी एक को जानने के लिए दूसरे को जानना आवश्यक होता है। हिंदी साहित्य में सामान्यत: 1970 ई. के बाद के समय को समकालीन कहा जाता है। समकालीन समय में साहित्य की प्रत्येक विधा पर सृजन का कार्य निरंतर गति से चल रहा है। आज जिस प्रकार से समकालीन लेखक लिख रहे हैं वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थवादी है। समकालीन कहानियों में स्त्रियों, दलितों तथा किसानों की आन्तरिक पीड़ा का मुखर प्रस्तुतीकरण हो रहा है। समकालीन कहानियों में न वैचारिक जकड़बन्दी है, न सीमित जीवनानुभव पर आधारित कलाबाजी है। समकालीन कहानीकार अपने समय के बृहत्तर सच को उसकी पूरी विविधता में चित्रित करने में लगा हुआ है। आज हमारे जीवन पर वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, मीडिया आदि का प्रभाव तथा दबाव है। इन दबावों को पहचानना और इनके बीच से जीवन का रास्ता तलाशना आज के कहानीकार की जिम्मेदारी है। वर्तमान कहानीकार इस जिम्मेदारी के प्रति सचेत दिखते हैं। विभिन्न कहानी आंदोलनों ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा दी है। इसी के कारण हिन्दी की समकालीन कहानी के कथ्य और शिल्प में व्यापक परिवर्तन आया है। वर्तमान कहानी लेखक आंचलिक परिवेश पर कहानियाँ लिख रहे हैं तथा आम बोलचाल की भाषा में जीवन के नये पक्षों को उजागर कर रहे हैं।

समकालीन कहानी में समकालीन समाज की जिन्दगी तथा सोच में आये परिवर्तनों का जितना यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है वह दुर्लभ है। इसका कारण यह है कि आज की कहानी में कला भी है और समाज की समझ भी है, जिन्दगी के यथार्थ से जुड़ी सर्जनात्मक भाषा भी है और उसे अन्य वृहत्तर सामाजिक समुदायों के साथ जोड़कर सार्वजनिक चरित्रों का निर्माण करने की क्षमता भी है। अत: कहा जा सकता है कि वैचारिक स्तर पर समकालीन हिन्दी कहानी अत्यंत समृद्ध है । समकालीन कहानीकारों ने समय के बदलाव और विकास की प्रक्रियाओं को अपनी कहानियों का विषय बनाया है तथा उसे समकालीन समाज से जोड़ते हुए कहानी की दुनिया रची है । हिन्दी की समकालीन कहानियों में अभिव्यक्त समाज का अनुशीलन प्रस्तुत करने के लिए उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष पर विचार करना अनिवार्य है। समाज से कटकर कहानी निष्प्राण हो जाती है। समकालीन हिन्दी कहानियों का महत्व इस बात को लेकर है कि उसमें समसामयिक परिवेश की हर सच्चाई को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। समाज में प्रचलित ज्वलंत समस्याओं के वास्तविक

स्वरूप को जाने बिना यह अभिव्यक्ति संभव नहीं हो सकती । समकालीन कथा-साहित्य में शिवमूर्ति का विशेष स्थान है । समकालीन हिन्दी साहित्य में अपने रचनात्मक कार्य एवं मान्यताओं के चलते इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध में समकालीन कहानीकार शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज के विविध पहलुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । भारतीय ग्रामीण तथा शहरी समाज की सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण करने में सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक व्यवस्था एवं उनकी विसंगतियों, नारी की सामाजिक स्थिति, जमींदार और किसान मजदूरों के बीच संघर्ष, अधिकारी और कामगार के बीच संघर्ष तथा समाज में वर्ण विभाजित व्यक्तियों के बीच संघर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जिसे समाज में निरंतर देखा जाता है । समाज में नारी का निरंतर शोषण होता आया है । नारी-नारी संघर्ष, नारी-पुरुष संघर्ष, नारी का यौन शोषण आदि हमारे समाज के अहम मुद्दे हैं । प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध का उद्देश्य शिवमूर्ति के कथा साहित्य में उपस्थित समकालीन समाज के प्रश्नों को समझने की दृष्टि का विकास करना है ।

शिवमूर्ति के कथा साहित्य में ग्रामीण समाज का सच और समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों के आपसी संबंधों तथा सामाजिक विकास का सटीक चित्रण हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर भारत के गांवों में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से जो बदलाव देखे गए हैं, उनकी जटिलता को उन्होंने बारीकी और तटस्थता से अभिव्यक्त किया है । उनके कथा साहित्य के इन्हीं पक्षों को ध्यान में रखते हुए मैंने इस लघु शोध-प्रबंध में शिवमूर्ति की समाज दृष्टि को समझाने की कोशिश की है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध का विषय है - "शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज : विशेष संदर्भ केशर-कस्तूरी ।'' इसे चार अध्यायों में विभाजित किया गया है -

प्रथम अध्याय 'समकालीन कहानी और शिवमूर्ति : स्वरूप विवेचन' के तीन खण्ड किये गये हैं । प्रथम खण्ड 'समकालीन कहानी : सामान्य परिचय' के अंतर्गत सर्वप्रथम समकालीन का अर्थ क्या है ? इसे विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है । द्वितीय खण्ड 'समकालीन कहानी : प्रमुख प्रवृत्तियाँ' के अंतर्गत समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है । संसार या इस विराट प्रकृति में मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो

प्रकृति से संघर्ष कर अपने सुख और सुविधाओं के लिए विभिन्न प्रकार के अनुसन्धान करता है। यह इस जगत की वास्तविकता हैं। मानव जीवन जगत की इसी प्रणाली से संबंधित हुआ करता है। समकालीन कहानी में अपने युग विशेष के सारे जीवन संदर्भ रुपायित हुए हैं। समकालीन कहानी समकालीन मानवीय जीवन संदर्भो को पूरी अर्थवत्ता के साथ अपने में समेटे हुए हैं। प्रमुख प्रवृत्तियों में नारी की सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्गत कहा गया है कि संसार में दो घटक हैं - पुरुष और नारी, दोनों की अपनी मूल प्रवित्तियाँ और विभिन्नताएँ हैं। इन्ही की परस्पर बनावट से जीवन की आकृति बनती है। उन आकृति को समझने का प्रयास एवं उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। उस आकृति को जब कोई कलाकार देखता है और उस आकृति को बुनते-बुनते ही उसकी बुनाई की प्रक्रिया की जब अभिव्यक्ति होती है तो कहानी बनती है, चाहे जीवन में हो, राजनीति में हो, अर्थ व्यवस्था में हो, पुरुष की प्रधानता एवं प्रभुत्व में हो, परन्तु जिन्दगी की बुनाई नारी के स्वरूप पर ही निर्भर करती है। इसलिए हिन्दी कहानी में आद्यंत नारी का ही प्रधानता रही है। इसी बात को समकालीन-सांस्कृतिक जीवन में दर्शाया गया है। राजनीतिक जीवन के अन्तर्गत समकालीन कहानीकारो ने शोषण और अन्याय के विरुद्ध आम आदमी की संघर्षधर्मी चेतना की प्रखरतर से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। आज के समय में आम आदमी भी यह बात जान चुका है कि अभी जो व्यवस्था कायम है उसके आधार पर अपने हक को हासिल नहीं किया जा सकता क्योंकि यह वही व्यवस्था है जो पूंजीपतियों को संरक्षण देती है तथा उनकी सुरक्षा करती है। पारिवारिक जीवन के अंतर्गत समकालीन कहानियों में वर्णित पारिवारिक संबंधों का वर्णन किया गया है। तीव्र गति से चलने वाले जीवन में पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-भाई तक एक दूसरे के लिए अजनबी हो गए हैं। साथ ही इस अध्याय में कहानीकार शिवमूर्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सामान्य परिचय भी दिया गया है। व्यक्तित्व में उनके जन्म से लेकर अब तक के जीवन का वर्णन किया गया है और कृतित्व में उनकी प्रत्येक कृति का संक्षेप्त में विवरण प्रस्तुत किया गया है। तृतीय खण्ड 'शिवमूर्ति : व्यक्तित्व और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय' के अंतर्गत शिवमूर्ति के जन्म, जन्मस्थान, माता-पिता, परिवार, शिक्षा, जीवन और व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

लघु शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय 'समकालीन हिन्दी कहानी एवं समाज' है, जिसे दो उप-शीर्षको में विभक्त किया गया है। प्रथम उप-शीर्षक 'समकालीन कहानी : सामान्य परिचय' के अन्तर्गत समाज शब्द का अर्थ क्या है इसे विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है। समाज के प्रमुख घटकों में व्यक्ति, समुदाय, परिवार, सामाजिक रिश्ते-नाते आदि आते हैं। समाज प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन सब से जुड़ा हुआ है।

समाज का आरम्भिक रूप जितना सरल है विकास उतना ही जटिल। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि विषय समाज के अन्तर्गत ही आते हैं। इन सब में यदि थोड़ा भी परिवर्तन होता है तो समाज उससे प्रभावित होता है। इन परिभाषाओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि समाज रीतियों, कार्य प्रणालियों, श्रेणियों, विभिन्न समूहों एवं मानव व्यवहार के नियंत्रणों आदि की व्यवस्था है। द्वितीय उप-शीर्षक 'समकालीन कहानी : प्रमुख प्रवृत्तियाँ' के अंतर्गत समकालीन समाज के साथ संस्कृति को भी विश्लेषित किया गया है। समकालीन समाज परिवर्तन के सम्वेदनात्मक उद्वेग से गुजर रहा है, इसी बात का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। समकालीन कहानी, नई कहानी से अलग क्यों है इस तथ्य का संक्षेप में निरूपण भी इसमें किया गया है। समकालीन कहानियों में सामाजिक समुदायों एवं समूहों द्वारा अपने वजूद के लिए किए जा रहे संघर्ष को देखने एवं उसे ऐतिहासिक दृष्टि से व्याख्यायित करने की चेतना दिखाई पड़ती है। समकालीन कहानी में व्यक्ति और समाज के साथ उसके संबंधों की बजाय, सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अन्दर और बाहर अस्तित्व रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष की चेतना अधिक दिखाई पड़ती है। समकालीन कहानी में यथार्थ के स्तर पर निर्मित हाशिये के समाज की भूमिका जितने बड़े पैमाने पर दिखाई पड़ती है, उतना अन्य दौर की कहानियों में नहीं। समकालीन कहानी के माध्यम से जीवन की तड़प और तड़प के कारणों को उकेरा गया है। संकट का यथार्थ या यथार्थ का संकट यही समकालीन कहानी की पहचान बनाता है। समकालीन कहानीकारों ने आतंक के यथार्थ को समझा तथा महसूस किया है। उन्होंने दलित, शोषित वर्ग को जागरूक किया और उनकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति को उचित समझते हुए उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष हेतु प्रेरित किया है। समकालीन कहानी का जीवन यथार्थ, परिवेश, अनुभव सब कुछ पुरानी कहानी की अपेक्षा भिन्न है। इस अध्याय में इन्हीं सब बातों का संक्षेप में विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

लघु शोध-प्रबंध का तृतीय अध्याय शिवमूर्ति की कहानियों से संबंधित है। इसका शीर्षक है, 'शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज के विविध आयाम'। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में मुख्यत वर्ण, जाति, ग्रामीण जीवन, पारिवारिक व्यवस्था तथा स्त्री-पुरुष के संबंधो को विषय बनाया है। इस अध्याय को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड 'वर्ण और जाति' के अन्तर्गत शिवमूर्ति की कहानियों में वर्णित समाज का वर्णन किया गया है। उनकी कहानियों में मौजूद वर्ण और जाति को निरुपित किया गया है साथ ही वर्ण और जाति क्या है स्पष्ट किया गया है, उसके बाद शिवमूर्ति की कहानियों में वर्ण और जाति की स्थिति क्या है उसे निरुपित किया गया है। द्वितीय खण्ड 'पारिवारिक व्यवस्था' के अंतर्गत पारिवारिक विघटन, परिवार में स्त्री की स्थिति, स्त्री-

पुरुष के पारिवारिक सम्बन्ध का स्वरूप कैसा है उसका चित्रण प्रस्तुत है। तृतीय खण्ड 'ग्रामीण तथा नगरी जीवन' के अंतर्गत शिवमूर्ति की कहानियों में गरीब जनता की दरिद्र, बदहाल स्थिति तथा अंधविश्वास को रेखांकित किया गया है, साथ ही नगरीय जीवन को भी निरुपित किया गया है। चतुर्थ खण्ड 'स्त्री-पुरुष सम्बन्ध' के अंतर्गत शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के स्वरूप का विवेचन किया गया है। उनकी हर एक कहानी में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अलग-अलग प्रकार का है। गाँव, समाज में जितने प्रकार के लोग हैं उतने प्रकार की सोच भी है। शिवमूर्ति ने सभी प्रकार की सोच वाले स्त्री-पुरुषों को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। उनकी प्रत्येक कहानी में पुरुष स्त्री से कम लाचार है वह अपना निर्णय खुद लेता है। उनकी कहानियों में कहीं-न-कहीं पुरुष मानसिकता का चित्रण दिखाई पड़ता है।

लघु शोध-प्रबंध का चतुर्थ अध्याय है, 'शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज का वैशिष्ट्य' इसे पाँच उप अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है और शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज को दिखाने का प्रयास किया गया है। प्रथम उप अध्याय 'जाति' के अंतर्गत जाति का अर्थ तथा उसकी परिभाषा दी गयी है। उसके पश्चात् शिवमूर्ति की कहानियों में जाति किस प्रकार से मौजूद है इसे बताया गया है। शिवमूर्ति की कहानियों में जाति व्यवस्था के साथ दलित चेतना भी है। उनकी कहानियों में मुख्यत: स्त्री, दलित, तथा दलित स्त्री की पीड़ा की कहानी है। शिवमूर्ति की कहानियाँ दलित अस्मिता के बारे में कहती ही नहीं, उसे सिद्ध भी करती हैं। शब्द दर शब्द, पंक्ति दर पंक्ति, कहानी दर कहानी वे निरंतर दलित और वंचित जाति की अस्मिता का साहित्य रचते हैं। जाति आधारित राजनीति के कारण निम्नतर जातियों पर भाँति-भाँति के अत्याचार हो रहे हैं। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में समाज के यथार्थ को बखूबी अंकित करने का प्रयास किया हैं। द्वितीय उप अध्याय 'स्त्री' के अंतर्गत शिवमूर्ति ने किस तरह स्त्री के संघर्ष को अपनी कहानियों में स्थान दिया है और शिवमूर्ति की कहानियों में किसानों और मजदूरों की भूख, सामंती समाज द्वारा उनका शोषण, दमन तथा उनकी आर्थिक समस्याओं का भी वर्णन मिलता है। जातिगत शोषण का ही परिणाम है कि शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की जर्जरता, अकाल, भुखमारी से उत्पन्न स्थितियाँ मौजूद हैं। तृतीय उप अध्याय 'राजनैतिक चेतना' के अंतर्गत गाँवों के राजनीति में किस तरह गरिबों, दलितों का शोषण होता है उस का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ उप अध्याय 'आर्थिक स्थिति' के अंतर्गत ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया गया है कि किस तरह से गाँवों में लोगों को आर्थिक विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। 'ग्रामीण जीवन का प्रमाणिक यथार्थ' नामक पंचम उप अध्याय के द्वारा शिवमूर्ति की कहानियों में

ग्रामीण जीवन के यथार्थ को निरुपित किया गया है। आधुनिक समय में भी विद्वमान वर्ण व्यवस्था, धर्म-संस्कार, जाति, नारी एवं दलितों की स्थिति नगरीय-ग्रामीण लोगों का पारिवारिक जीवन तथा उनमें व्याप्त विकृतियों, कुंठाओं, चारित्रिक दोष, भ्रष्टाचार तथा हिंसा जैसी सामाजिक समस्याएँ आदि इनकी कहानियों में चित्रित है। समकालीन समाज का यथार्थ अपने समग्र पहलूओं के साथ इनकी कहानियों में स्थान पाता है। इन समकालीन समाज का चित्रण इस लघु शोध प्रबंध में मौजूद हैं।

इस लघु शोध-प्रबंध को पूर्ण रूप देने में मुझे अनेक लोगों का सहयोग मिला जिनकी मैं आभारी हूँ। सर्वप्रथम मैं हिन्दी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध विषय पर शोध करने की अनुमति और अवसर दिया। मैं अपनी आदरणीय गुरुवर तथा शोध निर्देशक श्री दिनेश साहू के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने शोध-कार्य के दौरान मार्गदर्शन दिया। मैं डॉ. आदित्य विक्रम एवं डॉ. चुकी भूटिया की भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध-विषय से संबंधित अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे लाभान्वित किया। साथ ही मैं विभाग के अन्य गुरुजनों प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, डॉ. श्रीकांत द्विवेदी और बृजेन्द्र अग्निहोत्री की भी आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य में अपने सुझावों द्वारा मेरी सहायता की।

मैं नेहू के शोधार्थी अभिनव, आलोक सिंह और प्रमोद राजभर के प्रति भी आभार ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने शोध कार्य से संबंधित सामग्री को जुटाने में मेरी सहायता की। मैं आभार व्यक्त करती हूँ, भाई घनश्याम तथा बहन मुनू का जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को संपन्न करने के लिए टाइपिंग में सहयोग किया। साथ ही पुस्तकालय एवं रिसर्च फलोर के समस्त पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध-कार्य में यथासंभव सहायता पदान की। मैं अपने पूरे परिवार का ह्रदय से धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने इस दौरान हर कमजोर और कठिन दौर में मेरी सहायता की और मित्र रंजू का भी जिनका महत्वपूर्ण सहयोग मुझे मिला।

स्थान : गंगटोक, सिक्किम **अनुसंधित्सु**

तिथि : **नुनिता राई**

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

समकालीन कहानी और शिवमूर्ति :

स्वरूप विवेचन

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिंदी कहानी एवं समाज

तृतीय अध्याय

शिवमूर्ति की कहानियों में

अभिव्यक्त समाज के विविध आयाम

चतुर्थ अध्याय

शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज का वैशिष्ट्य

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

प्रथम अध्याय

समकालीन कहानी और शिवमूर्ति : स्वरुप विवेचन

1. क. समकालीन कहानी : सामान्य परिचय

'समकालीन' हिंदी कहानी पर विचार करने से पहले समकालीन शब्द पर विचार करना आवश्यक है। 'समकालीन' शब्द 'सम' उपसर्ग तथा 'कालीन' विशेषण के योग से बना है। 'सम' उपसर्ग का प्रयोग प्रायः 'एक ही' अथवा 'एक साथ' के अर्थ में होता है तथा 'कालीन' का अर्थ 'काल में' अथवा 'समय में' है। अतः हम कह सकते हैं कि 'समकालीन' का सामान्य तथा शाब्दिक अर्थ एक ही समय में होने या रहने वाले के रूप में स्पष्ट है। 'मानक हिंदी कोश' में इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है - "जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हों। एक ही समय में रहने वाले। जैसे महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे। जो उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हो।"[1]

'समकालीन' शब्द का अर्थ 'नालंदा विशाल शब्द-सागर' के अनुसार, जो एक ही समय में हुए हो तथा शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश में इसका अर्थ - एक ही समय का, सामायिक रूप में स्पष्ट हुआ है।

इस तरह से देखें तो 'समकालीन' शब्द का सामान्य अर्थ होता है - एक ही समय में होने अथवा रहने वाले। इसे साहित्यिक सन्दर्भ में देखे तो एक ही कालखंड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति अथवा एक ही कालखण्ड में रहने वाले व्यक्तियों तथा रचनाकारों के अर्थ में प्रस्तुत किया जा सकता है। 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' को आज के सन्दर्भ में अनेक रूपों में व्याख्या किया गया है। हिंदी में 'समकालीन और 'समसामायिक' शब्द अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के 'कान्टेम्पोरेरी' (Contemporary) अथवा 'कोइवल' (Coeval) शब्द का पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। 'कान्टेम्पोरेरी' अंग्रेजी शब्द के लिए हिंदी में दो पर्यायों 'समकालीन' और 'समसामायिक' शब्दों का प्रयोग होता है। डॉ. कामिल बुल्के के अंग्रेजी-हिंदी शब्द कोश में 'कान्टेम्पोरेरी' शब्द का हिंदी में 'समकालीन' और 'समसामयिक' शब्दों को पर्याय रूप में बताया गया है। परन्तु अंग्रेजी में 'कान्टेम्पोरेरी' शब्द का अर्थ एक ही समय में रहने या होने से है और यही अर्थ हिंदी में समकालीन

शब्द से ध्वनित होता है। पश्चिम में 'कान्टेम्पोरेरी' तथा 'कोटेम्पोरेरी' शब्दों को लेकर विवाद है। परन्तु आज 'कान्टेम्पोरेरी' शब्द को ही इस सन्दर्भ में मान्यता प्राप्त है।

डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार - " 'समकाल' शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खण्ड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है ? इसे उलटकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित-चित्रित करके ही हम समकालीन की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के मनुष्य (देशकाल-स्थिति) के अंकन में वस्तुगत रहे, यानि उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानव बिम्ब उभारता हो वह वास्तविक जीवन के निकट हो।"[2] डॉ. रवीन्द्र समर ने समकालीन के तीन अर्थ बताये हैं, उनके अनुसार समकालीन शब्द "कालविशेष से सम्बद्ध, व्यक्तिविशेष के काल-यापन से सम्बद्ध तथा साहित्य समाज अथवा प्रवृत्ति से सम्बंधित संश्लिष्ट कालखण्ड से होता है।"[3]

अतः एक ही समय में होने वाले व्यक्तियों तथा रचनाकारों को ही समकालीन कहा गया है, परन्तु ऐसा करने से व्यवहार में 'समकालीनता' के अर्थ को विकृत करना है। समकालीनता का सम्बन्ध समसामायिकता से है। जो रचना अपने समय के बोध को व्यक्त करता है उसी रचना को समकालीन कहा जाता है और जो रचनाकार अपनी रचना में परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ को रचना के माध्यम से व्यक्त करता हो, वही समकालीन रचनाकार है। एक ही समय के व्यक्ति या रचनाकार सभी लेखक समकालीन हो ऐसा जरुरी नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि समकालीन रचनाकार स्वयं को समसामायिक वस्तुस्थिति की स्वीकृति तक ही सीमित नहीं करता, बल्कि वह उसका परिवर्तन का आकांक्षी भी होता है तथा उसके रचनात्मक सक्रियता का निर्वहन भी करता है। अर्थात् "समकालीन अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केंद्रीय महत्त्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।"[4] समकालीनता की अनिवार्य शर्तें हैं - स्वचेतना, संचेतना और संवेदनशीलता। जड़ व्यक्ति अपने काल, समय और प्रवृत्तियों की परवाह भी नहीं करता बस वह तो एक गतिहीन मूर्छित अवस्था में ही जीता है, परन्तु सचेतन ही समकालीन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध, समूहबोध और व्यक्तिबोध होता है। काल के कोई भी बिंदु अलग-अलग नहीं माना जा सकता तथा वर्तमान में वह भूत और भविष्य को समझता है। यही समझ ही व्यक्ति को समकालीन बनाती है तथा उन व्यक्तियों को काल की निरंतरता

व प्रवाह और परिणतियों की संभावनाओं का ज्ञान देती है। अतः समकालीन का सम्बन्ध कालविशेष से होने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के कालपन तथा साहित्य, समाज अथवा परिवेश के परिवर्तनशील की भी वह दायित्वपूर्ण चेतना है जो अपने पहलुओं को निश्चित रूप में व्यक्त करते हैं। हर चिंतन समकालीन से ही यथार्थता को लेते हैं। समकालीनता का स्वरूप परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण देशकाल की विविधता में भिन्नता हो सकता है। स्थिति के प्रति जागरूक होना समकालीन के दायित्व निर्वहन से भी अभिव्यंजित होता है।

देशकाल का दायित्व होता है मानवीय दायित्व को प्रतिबिंबित करना। उसमें कोई बड़ी बात नहीं होती या कोई बड़ा स्वप्न या कोई बड़ा अभिमान भी नहीं है, इसके बावजूद इसमें एक ईमानदारी हो जिसे उन स्थिति विशेष की अनुभूति का अर्थ दे सके। इसी अर्थ के माध्यम से उन क्षणों की सार्थकता को पा सके जो वर्त्तमान के यथार्थ से ऊपर उठकर उसकी चेतना को आंदोलित करने में समर्थ हो पाए। समकालीन बोध कभी भी पारंपरिक मूल्य चेतना को नहीं मानता है। जिस प्रकार नए मूल्यों की खोज में वह अनुभव करता है जिस समस्याओं से उसे गुजरना पड़ता है, इनमें से जो भी उसे सही और सार्थक प्रतीत होता है, उसे ही प्रतिमान के रूप में घोषित करता है।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय चिंतन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए था न कि समकालीनता के लिए। परन्तु स्वतंत्रता के बाद जब असमानता और राजनीतिक अस्थिरता का जो दौर आया उससे समकालीन बौद्धिकता में बहुत तीखापन हुआ। स्वतंत्र भारत में आम आदमी है गरीबी, बेरोजगारी, घुटन और विवशता में जीने को मजबूर हो गए। जितने भी सरकारी योजनाएँ थी वे सिर्फ फाइलों में दबी रही, आम लोगों को उसी स्थिति में रहना पड़ा जिस स्थिति में वह स्वतन्त्रता के पहले थे। किसी भी सरकारी योजनाओं से उन्हें खास लाभ नहीं हो पाया। इसके अलावा जो जनप्रतिनिधि थे, जो आम जनता के हित की शपथ लेकर संसद में गए थे, वे सभी कुर्सी के लिए लड़ते रहे और सिद्धान्तहीन, दलगत राजनीति करते रहे। भ्रष्टाचार बढ़ता ही गया। समकालीन रचनाकारों के लिए भारतीय संसद मरी हुई साबित हुई। सन् 1960 के बाद यह स्थिति इतनी बड़ी हो गई कि लोग पूर्णतः विद्रोही हो गए। देश का समकालीन आम नागरिक पशुस्तर से थोड़ा सा ऊपर जीने के लिए विवश थे और लाखों लोग पशुस्तर पर भी जीवित रह नहीं पाते थे, क्योंकि उन्हें न तो भोजन उपलब्ध होता और न ही निवास स्थान। समाज में हो रही ऐसी स्थितियों में पूंजी का केन्द्रीकरण होता गया और भारतीय जीवन दो वर्गों

में बँट गया- एक अमीर और दूसरा गरीब में। इन दोनों के बीच में एक वर्ग और विकसित हुआ जो मध्यवर्ग था यह न तो गरीब था और न ही अमीर। बस किसी तरह से अपने स्तर को बनाए हुए जीता रहा। ज्यादातर समकालीन चिन्तक और रचनाकार इसी वर्ग के हैं जो परिवेश की विसंगतियों के प्रत्यक्ष भोक्ता रहे हैं। विवशता, संघर्ष और बेकारी में इन सब का चिंतन क्रमशः आक्रामक और तीखा होता गया है। इसी में समकालीनता की पहचान और ज्यादा स्पष्ट होती है। असल में समकालीनता की यह स्पष्ट पहचान है कि वह शोषकों, बर्बरों तथा अत्याचारियों के आतंक एवं दमन चक्र के विरुद्ध प्रतिबद्ध रूप में जनसंघर्ष और मुक्ति अभियानों को अपना सम्पूर्ण समर्थन दें। यही अनुभव उन सब विषम स्थितियों के विरोध में समकालीन रचनाकार को खड़ा करता है जो मानवता के विरुद्ध हैं।

भारतीय परंपरा में समझौते अतीत से मिलते हैं या परिवर्तन के ऐसे दौर आते हैं जब हम समसामायिक बनने की होड़ में अतीत से प्राप्त उत्तराधिकार को लात मार देते हैं, पर यह ऐसा नहीं है कि हम आज जो भी महसूस करते हैं या जिस अकेलेपन को नैराश्य, संदेह तथा अनास्था के दौर से गुजर रहे हैं, वे दौर पहले नहीं आए थे। लोग पहले से ही संघर्ष करते आ रहे हैं और आगे भी करते ही रहेंगे। इस इतिहासबोध और भविष्यबोध को अपने वर्तमान में समेट कर समस्त युगबोध को प्रस्तुत करना समकालीनता का उद्देश्य होता है। जैसे कि अशोक वाजपेयी ने लिखा है- "बावजूद बहुत सारे बुनियादी अंतरों के, बीसवीं शती का भारतीय मनुष्य एकदम अद्वितीय और विविक्त है और इसलिए मनुष्यता के परंपरागत इतिहास के एकदम बाहर और अपरिभाषेय ऐसा मानना समकालीन साहित्य के मानवीय सन्दर्भ को अकारण सीमित और संकरा बना देता है।" [5]

समकालीनता को परिवर्तन की भूमिका में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व माना है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर आज तक लगभग 67 वर्षों तक, सामाजिक तथा राजनीतिक विसंगतियाँ हमारी चेतना पर इस प्रकार छाई रही हैं कि उनके प्रति हमारा प्रतिरोधात्मक रवैया लगभग निःशेष हो चुका है। अतः अनेक वामपंथी आलोचक स्थितियों के पीछे छिपी उत्तरदायी शक्तियों की पहचान समकालीन बोध के लिए अनिवार्य मानते हैं। वे लोग 'समकालीन' शब्द को अर्थ विस्तार देकर इसे आन्दोलनधर्म प्रवृत्ति से जोड़ते हैं। 'समकालीन' उनके मन में कहानी 'विद्रोही कहानी' तथा विरोध की कहानी है क्योंकि समकालीन सृजन मूलतः स्थापित व्यवस्था या एस्टाब्लिश्मेंट का विरोधी है। वे समकालीनता को शोषक वर्गों और उनकी शक्तियों-समूहों का ध्वंश, सक्रिय संघर्ष, आक्रामकता आदि से जोड़ते हैं। यहाँ

अपने राजनीतिक विचारों का समकालीनता पर प्रक्षेपण करने का अति-उत्साह लक्षित हो सकता है। परन्तु समकालीन का जो समाज में परिदृश्य है, वह किन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से होकर इस रूप को प्राप्त हुआ है, इस महत्वपूर्ण पक्ष को समकालीनता में देखने-परखने पर बल भी देता है। यह कहा जा सकता है कि समकालीन रचनाकार यथार्थ को यथास्थिति ही स्वीकार नहीं करता, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि से इसकी जाँच करता है। उसमें पाए जाने वाली विसंगतियों और अंतर्विरोधों के कारण वह क्रांतिकारी रवैया भी अपनाता है। समकालीन परिदृश्य का बोध एकांगी और सतही होता है क्योंकि समकालीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से गहनता से प्रभावित होते है। समकालीन बोध अनिवार्य रूप से द्वंद्वात्मकता से मुक्त होता है। उसके छोर अतीत एवं अनागत की ओर फैलते हुए हैं। अतः समकालीनता में समसामयिक बोध ऐतिहासिक दृष्टि सक्रियता, द्वंद्वात्मकता आदि तत्व विद्यमान रहते हैं।

समकालीन कहानी की बड़ी विशेषता यह है कि उसका अपने परिवेश से बहुत गहरे और गंभीर रूप से जुड़ना है। 'नयी कहानी' के कथा-दौर से ही परिवेश में जुड़ने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी परन्तु वहाँ कथाकार परिवेश से बहुत गहराई से संयुक्त नहीं हो पाया था। वह परिवेश की गहन समस्याओं और चिंताओं से सीधा नहीं टकराता था अपितु कन्नी काटकर निकल जाता था। परन्तु आज के लेखक वर्ग उन समस्याओं से सीधा जूझता हुआ स्वयं अपने को उन स्थितियों के बीच खड़ा पाता है। इन्हीं कारणों से आज वह परिवेश से प्रेम कथाएँ नहीं ढूंढ़ता अपितु गहरे जाकर उसकी समस्याओं से भिड़ता हुआ जीवन के उन यथार्थ को वाणी देता है। परिवेश से आज कहानीकार इतने गहरे से जुड़ा है कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को नई दृष्टि से उठाया गया है। यदि शिक्षण क्षेत्र की विसंगतियाँ कहानी में आई हैं तो हर कहानी उसका एक अलग-अलग पक्ष खोल रही है। हमारे जाने और देखे समाज तथा अनुभव-जगत में इस समकालीन कहानियों के माध्यम से नयी जानकारियाँ आ रही है। कहानीकार का परिवेश से जुड़ना केवल उसकी घोषणा या प्रतिबद्धता मात्र नहीं है अपितु अपने चारों ओर के जीवन में सामान्य मनुष्य की जिंदगी जीने के ढंग, चिंताएँ, उसकी समस्याएँ और जीविका के साधन हैं। इन सब को जानकर जब भी रचनाकार लेखनी उठता है तो निश्चय ही उस पर अपने युग जीवन और परिवेश की प्रत्येक समस्या अपनी पूरी गंभीरता और विविधता में चित्रित हो जाती है। समकालीन कहानी में परिवेश से

इसी रूप में जुड़कर कहानी लिखी है। शायद यही कारण है कि वह कहानी कम और जीवन की सच्चाई अधिक लगती है। जीवन सच्चाइयों की जीवित कहानी अपने परिवेश को आज राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि के बटे हुए खानों में नहीं देखती, आज परिवेश का रूप इन सब से जुड़ा हुआ है कि राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी प्रश्न एक साथ एक ही कहानी में लक्षित किये जा सकते हैं। परिवेश की भ्रष्ट व्यवस्था को बदलने की एक अकुलाहट, आक्रोश और चिंता का भाव इन कहानियों में एक जुझारू मुद्रा प्रदान करता है। समकालीन कथाकार अपने सामाजिक दायित्व बोध को स्वीकार कर रहा है। उसकी रचनाओं में सामाजिक परिवर्तनों का बिम्ब उभरता है और वह सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार करता है। समकालीन कहानीकार उन रूढ़ परम्पराओं, असामाजिक तत्वों, यथास्थितिवादियों को बेनकाब करता है। रोजमर्रा की जिंदगी के कड़वे अनुभव, मान-अपमान, रोजीरोटी के लिए कठिन संघर्ष तथा बेहतर ढंग से जीने के रास्ते की कठिनाइयाँ, वर्गगत उपेक्षा और चीजों को समझते हैं। आज आम आदमी स्थितियों को अपनी नियति मानने के लिए तैयार नहीं है। समकालीन कहानियों में पुरुष वर्ग ही नहीं अपितु नारी भी सामाजिक चेतना से लैस हो रही है। उसे समाज, घर-परिवार, पति, माता-पिता सबसे इस पुरुष प्रधान संस्कृति के खिलाफ लड़ना पड़ रहा है। सामाजिक-धार्मिक, रस्मों-रिवाजों से उसे जमकर टक्कड़ लेनी पड़ रही है। वह पुरुषों की बराबरी में स्वयं को लाने की चेष्टा में विरोध से लेकर विद्रोह की तरफ गुजरने के लिए विवश हो गयी है। समकालीन कहानी में विद्रोह, आक्रोश और व्यवस्था के आमूल-चूल बदल डालने का संकल्प एक नए तेवर के रूप में प्रकट हुआ है। इतनी गहराई से परिवेश के प्रति जुड़ना ही समकालीन कहानी के कथ्य की आधारभूमि है जिससे उसकी अन्य प्रवृत्तियाँ परिचालित होती है। अगर हम कोई भी कथ्य की कहानी को उठाकर देख ले तो परिवेश की ही कोई न कोई विकृति, विसंगति को उजागर करती हैं। पहले की जो भी कहानियाँ थी वे आदर्श घटना, आकर्षक स्थितियाँ तथा महान चरित्र रचती थी। सामाजिक सुधारों को उद्घाटित करती थी या तो सूक्ष्म मनोग्रंथियों का गहन विश्लेषण करती थीं। परन्तु समकालीन कहानियाँ पूरे परिवेश की वास्तविकता को रूपांतरित करती हैं ताकि उनमें बेहतर परिवेश प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा हो। इन्हीं बातों को फलीभूत करते हुए समकालीन कथाकार स्वाधीनता आन्दोलन के बहुमूल्य विरासतों को भी फिर से हासिल करने का रचनात्मक उद्यम करता है। व्यंग्य जो कभी शैली हुआ करता था, वह अब वस्तु रूप में विकसित हुआ। कुरूपताओं और दुर्बलताओं को साहित्य तो

उजागर करता ही रहा है। समकालीन कहानीकारों ने इससे आगे बढ़कर उनके प्रति आक्रोश का भाव भी दर्शाया है।

अतः समकालीन कहानियाँ पहले की अपेक्षा अधिक जीवन से जुड़ी है। मनुष्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का चित्रण उसमें मिलता है। मनुष्य जीवन का कोई भी पक्ष उससे अछुता नहीं रहा है। समकालीन कहानी को मनुष्य जीवन का वास्तविक यथार्थ भी कहा जा सकता है।

1. ख. समकालीन कहानी : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समकालीन हिंदी कहानी की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रमुख प्रवृत्तियों का विवरण निम्नलिखित है-

वास्तु-सृष्टि और जीवन

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक कहानियों में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जो परिवर्तन हुए हैं, उन सभी के बीच से कहानीकार गुजर चुका होता है, जिसे समाज के साथ हर कथाकारों ने भी भोगा है। कोई भी संदेह नहीं है कि वर्तमान के कहानी ने सांस्कृतिक विघटन के कुहासे तथा भौतिक और आर्थिक परिवर्तन को सहा है और आधुनिक युग की जटिल मानव-चेतना को आत्मसात किया है। कहानीकारों ने अपने चारों ओर व्याप्त विभीषिका को देखा और समझा है। औसत नवयुवक टूटन, शोषण, विपन्नता, आर्थिक, बड़े परिवार एवं बेकारी को झेल रहा है। यही मध्य समाज परिवार का चित्र था, जिसकी अभिव्यक्ति नए कहानीकारों ने की। समकालीन कहानीकारों ने इन सबको समझा और एक नए माध्यम से उसे अपनी कहानियों में सही स्थान देना शुरू किया। प्रतिभा और कल्पना शक्ति से कभी भी कहानी नहीं लिखी जा सकती। देश के अन्दर का हर एक बात जैसे ऐतिहासिक, अर्थनीति के भीतर की कुंठित, मनोवैज्ञानिक, मानव के बनते-बिगड़ते परिप्रेक्ष्य को तौलकर साहित्य में उभारने की जरुरत है। उसे नकारने या हिकारत करने से न तो यह गति बदलेगी और न ही रूकावट आएगी। समकालीन कहानी के लेखक अपने स्थितियों से एवं गहरी सूझ-बूझ से संपन्न है और जिस यथार्थ को संप्रेषित करने का आग्रह उसके आगे सर्वप्रमुख है वे हैं उनकी अपनी अनुभूति और नितांत प्रमाणिक यथार्थ। लेखकों में यथार्थ की सही और सार्थक पहचान है। अपने परिवेश के प्रति उसकी दृष्टि खुली, कुंठाहीन और सामाजिकता के आग्रह से युक्त है।

जैनेन्द्र कुमार और प्रेमचंद दोनों के बीच का एक ऐतिहासिक संवाद है। जैनेन्द्र ने प्रेमचंद जी से पूछा- "मैं क्या लिखूं? कुछ समझ में नहीं आता, कुछ राय दीजिए। प्रेमचंदजी का उत्तर था अपने चारों ओर जितने व्यक्ति दिखाई पड़े उनके जीवन सन्दर्भों को रचते चलो, एक से एक सुन्दर रचना जन्म लेती रहेगी। इस संवाद में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि जीवन-सन्दर्भ किसी भी रचना की अंतर्वस्तु के लिए सबसे बड़ा साधन है।"[6]

इस संसार या विराट प्रकृति में मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो एक ओर जहाँ प्रकृति से संघर्ष कर अपने सुख और सुविधाओं के लिए विभिन्न प्रकार का अनुसन्धान करता है। साथ ही साथ प्रकृति के साथ अपने इन संबंधों को जीवन का अंग भी बनाता है। प्रकृति और मनुष्य का भावमय सम्बन्ध तब से है जब से कला-सृष्टि का इतिहास उपलब्ध है। मानव एक प्राकृतिक प्राणी है। वह प्रकृति का एक अंश है लेकिन विलक्षण इस बात में है कि उसने अपने संघर्षों से वैयक्तिक और सामाजिक संबंधों के दो संसार रचे। यही दोनों संसार रचना से सन्दर्भ बन जाया करते हैं। रचना में जो भी रचा जाता है वह मानवीय जीवन का सन्दर्भ ही तो है। कथाकार इसी को अपने-अपने प्रकार से अनुरूप पुनर्सृजित करके हर रचनाकार अपने को अभिव्यंजित करता है। जो कुछ जीता है, जो कुछ देखता है, या जिसके लिए अनवरत संघर्ष करता है, यही सब होते हैं जीवन-सन्दर्भ। इन्हीं सन्दर्भों के द्वारा प्रेम, उत्साह, करुणा, घृणा आदि अनेक प्रकार के भावों की सृष्टि करता है। यह विचार तत्व के अंतर्गत भी इन्हीं जीवन-सन्दर्भों का महत्त्व है। स्वप्न की जो प्रक्रिया अचेतन में होती है, उसमे भी इन्हीं जीवन-सन्दर्भों की महत्ता होती है। ऐसा कभी नहीं होता है कि सपने में प्रियजनों से मिलकर घृणा या भय उत्पन्न होने तथा शत्रु को देखकर प्यार आने लगे। ऐसा कभी भी नहीं होता। अतः इस जगत की वास्तविकता ही अंतर्जगत की वास्तविकता होती है। जीवन-सन्दर्भ इन्हीं जगत तथा अंतर जीवन प्रणाली से सम्बंधित हुआ करता है और रचना इन्हीं जीवन-सन्दर्भों पर ही आश्रित हुआ करती हैं। जीवन प्रणाली सहज, सरल और सपाट हुआ करती हैं तो उन समय के दौर के जीवन-सन्दर्भ भी सामान्यतः सहज ही हुआ करती हैं। आज के जीवन सन्दर्भ में देखें तो पुरानी कविताओं में अभिव्यंजित सारे जीवन सन्दर्भ आज उतने जटिल नहीं लगते जितने आज के जीवन सन्दर्भ हैं। आज के मनुष्य के पास सूचनाओं का अम्बार है। दुष्कर अनगिनत आयाम उसके समक्ष हैं, जिससे होकर हर मनुष्य गुजरा करता है। आज जिस प्रकार से जीवन जटिलतम रूप में है ठीक उसी प्रकार जीवन के सन्दर्भ भी दिन-ब-दिन जटिल

होता जा रहा है। यह प्रक्रिया स्वाधीनता के बाद और भी तेज हुई है। जितने भी पुराने धर्म थे, आश्रित मूल्य चरमरा कर टूट गए सारे अनाचार क्रमशः आचार में बदलते गए। परन्तु नए मूल्य विकसित नहीं हुए। जिससे मनुष्य के जीवन संघर्ष, उसके कर्म आदि सभी कुछ उलझ गए। मनुष्य का अपना नियंत्रण भी अब अपने हाथ में नहीं रहा।

"परिस्थितियाँ प्रबल होती गयीं और मनुष्य असहाय, मोहभंग का ऐसा सिलसिला चला कि प्रायः मानस या तो चतुराई या चालाकी का केंद्र बन गया या भोलापन का वह स्तर जिसे मुर्खता भी कहा जा सकता है। इन सभी कारणों से जीवन-सन्दर्भों को एक-दुसरे से विल्गाना, विल्गा कर देखना, उसकी पहचान स्थापित कर उसे उदंतिकृत करना जटिल काम हो गया। समकालीन हिंदी कहानियों में ये ही जटिल जीवन-सन्दर्भ वास्तु-सृष्टि करते हैं।"[7] समकालीन कहानी को अपने युग विशेष के सन्दर्भ में सबसे अलग दिखने वाले सारे जीवन सन्दर्भ ही हैं। अतः किसी भी रचना की वास्तु-सृष्टि के प्रति मानवीय जीवन और उसके बदलते हुए सन्दर्भ भी मुख्य साधन हुआ करते हैं। जो रचनाकार इन जीवन-सन्दर्भों के साथ गहन आत्मीय होता है वही रचनाकार समकालीन कालजयी बनता है और कालजयी रचना को जन्म देता है। इसलिए कथा-मूल्याङ्कन के लिए अनिवार्य शर्त है कि कहानियों में बदलते हुए जीवन-सन्दर्भों को अन्वेषित किया जाए। समकालीन कहानीकारों ने इससे आगे बढ़कर उनके प्रति आक्रोश का भाव दर्शाया। परिवर्तनकारी जीवन-सन्दर्भों के लिए प्रयत्नशील समकालीन रचनात्मकता से अधिक किसी में अधिक रुझान नहीं देखा गया।

नारी का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन

समकालीन हिंदी कहानी में सांस्कृतिक जीवन का अधिक महत्व है। कहानी जीवन की मिट्टी से बहुत अन्दर तक जुड़ी हुई हैं। कहानी के साथ ही अन्य विधा को देखे तो उपन्यास में अनुकरण की दृष्टि है, नाटक में शैल्पिक चमत्कार का प्रभाव है, प्रतीक एब्सर्डिटी, प्रयोग धर्मिता का वितंडावाद है। उपन्यास में भिन्न-भिन्न मुद्राएँ हैं, कुछ कृत्रिम रूप से तो कुछ आरोपित और कुछ पैबंदिकृत। परन्तु कहानी में कृतिकार जीवन की गीली मिट्टी पर खाली पाँव चल रहा है। संसार में दो ही तो घटक हैं - पुरुष और नारी। दोनों अपनी-अपनी मूल विषमताएँ, विभिन्नताएँ लिए हुए हैं। इन्हीं के परस्पर बनावट से जीवन की आकृति बनती है। उस आकृति को समझने का प्रयास एवं उसकी अभिव्यक्ति साहित्य है। उस आकृति को जब कोई कलाकार देखता है और उस आकृति को बुनते-बुनते ही उसकी बुनाई

प्रक्रिया की जब अभिव्यक्ति होती है तो कहानी बनती है । चाहे जीवन में हो, राजनीति में हो, अर्थव्यवस्था में हो, पुरुष की प्रधानता एवं प्रभुत्व हो परन्तु जिंदगी की बुनाई नारी के स्वरुप पर ही निर्भर करती है। शायद इसलिए हिंदी कहानी में आद्यंत नारी का ही प्राधान्य रहा है।

नारी के दो भाग हैं- उसका व्यक्तित्व एवं उसका भोग्य स्वरूप। नारी का चित्रण हिंदी साहित्य में कभी भी एक व्यक्ति के रूप में नहीं हुआ । नारी पर कलाकार की दृष्टि हमेशा पुरुष एवं उसके दृष्टिकोण के प्रिज्म के बीच से पड़ी । नारी पुरुष की चाह है, उसकी आवश्यकता है, साधारण आवश्यकता और उसी आवश्यकता की दृष्टि से मात्र नारी को सदा देखा गया है।

नारी को व्यक्ति के रूप में जिस साहित्य विधा ने मान्यता दी है, वह है कहानी । गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' की नारी बचपन में प्यार करती है और बड़ी होने पर अपने पति-पुत्र की रक्षा का भार उसी बचपन के प्रेमी को सौंपती है। प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' की नारी उसी दस्यु से प्रेम करती है जो उसके पिता का हत्यारा था। प्रेमचंद की कहानियों में समाज की जीवित हाड़-मांस की नारी सांसें लेती हैं। 'कफ़न' की बुधिया जो अपने हाड़ गलाकर भी पति और ससुर का पेट पालती है और मरने के बाद भी कफ़न के पैसे उनलोगों को दे जाती है। जिन पैसे से वे एकदिन जी भरकर शराब पीकर चहक उठते हैं। प्रेमचंद की कहानियों में अध्यापिकाएँ हैं, लेडी डॉक्टर हैं, गृहस्वामिनी है, बहिन, भाभी, माँ, चाची, सास आदि अर्थात् नारी अपने सभी रूपों में मौजूद है परन्तु प्रेमचंद के नारी पात्र इतने वैविध्य के बीच भी परिवार का एक अंग, एक कड़ी ही है। उन्होंने नारी को पारिवारिक संबंधों के अन्दर ही देखा है । व्यक्ति के रूप में जीवित स्वतंत्र जैविक इकाई के रूप में नहीं देखा । वे अपने परिवार का घोसला बनाती है, बच्चे उगाती है और पालती है, अपने सामाजिक अस्तित्व के लिए अर्जन कार्य करती है और फिर अपने दायित्वों के कारण उस कार्य में इस तरह से बँध जाती है कि चाह कर भी उसे छोड़ नहीं पाती। समकालीन हिंदी कहानी में नारी का स्वतंत्र रूप देखने का प्रयास किया गया। प्रेमचंद युग की नारी का यथार्थ चित्रण नहीं बल्कि यों कहे कि पारंपरिक बोध के अनुसार नारीत्व की धारणा को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास है। सेवा, त्याग, बलिदान एवं संयम जैसे अनेक शब्द हैं जो नारी-भावना तथा नारी चित्रण के साथ ऐसे चिपके हुए हैं कि उन साहित्य की न कल्पना की जा सकती थी न अनुमान। जैनेन्द्र की कहानी 'पत्नी' अत्यंत यथार्थ एवं वस्तुपरक दृष्टि से चित्रित की गई है, फिर भी वह पति के तर्कबाज मित्रों के लिए खाना बनाती है और पति की डांट खाकर भी उसके दरवाजे के

पास खड़ी रहती है कि शायद किसी चीज के आवश्यकता न पड़ जाए। प्रसाद की 'चंपा' अपने प्रेमी बुद्धगुप्त को पूर्णयता अस्वीकार कर देती है क्योंकि उसे यह विश्वास है कि बुद्धगुप्त ही उसके पिता का हत्यारा है। प्रेमचंद की 'रानी सारंधा' देवर पर लगे कलंक को छुड़ाने के लिए तथा पति की दृष्टि में पवित्र बने रहने के लिए निरपराध देवर को अपने हाथों विष दे देती है। बलिदान अथवा आत्मनिषेध जैसी नारी का वर्चस्व था। उस वर्चस्व को समकालीन कहानी ने तोड़ा है। समकालीन कहानी नारी के बलिदानमय स्वप्न की उपेक्षा तो नहीं करती परन्तु फोकस में बलिदान को नहीं रखती, बल्कि यथार्थ को रखती है, मनोवैज्ञानिक यथार्थ को।

समकालीन कहानियों में परंपरागत विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण पूरी तरह से बदल गया है। आज कल के विवाह में प्रेम या भावात्मक संवेदना के प्रति आस्था और विश्वास में कमी आ रही है। उसे बस एक समझौता के रूप में देखा जा रहा है। समकालीन नारियाँ अपनी अस्मिता के लिए पुरुष का साथ चाहती हैं, परन्तु पति के रूप में छली कपटी को देने के लिए वह विवश नहीं है। सुदर्शन चोपड़ा की कहानी 'स्वीकारांत' की नायिका कहती है- "पत्नी भी पेशा है ही। फैमिली प्रास कम गवर्नेंस से अधिक क्या हैसियत है उसकी ? सबसे अधिक बेकार भी। मगर इसकी ट्रेड यूनियन स्थिति सब पेशों से अधिक मजबूत है। शायद इसलिए अधिकतम औरतें इस पेशे में आना चाहती हैं। मगर इस लाइन में इतना नहीं रहा।"[8] दिनेश पालीवाल की कहानी 'जो नहीं हुआ' की सुमी निश्चय करती है कि "वह वापस उस नरक में नहीं जाएगी जहाँ उसे उपभोग की वस्तु की तरह इस्तेमाल किये जाने की साजिश चलती है और जहाँ उसे हर वक्त तौला जाता है- जब अस्तित्व का सवाल है तो वह अपने लिए जियेगी सिर्फ अपने लिए, संवेदनशील मन के लिए।"[9] समकालीन कहानियों में प्रेम विवाह को पर्याप्त समर्थन दिया गया है। पारंपरिक विवाह पद्धति को नकारा गया है। अपने परिवार के खिलाफ जा कर सामाजिक मर्यादा और परंपरा के विरुद्ध प्रेमी-प्रेमिका परिणय सूत्र में बंधने का साहस बटोरने लगे हैं। नमिता सिंह की कहानी 'एक निर्णय' की मालती अपने दो चाहने वालों के बीच एक का चुनाव करती है जो उसकी भावनाओं की कद्र करता है। वह ऊपर से प्रगतिशील है तथा भीतर से परंपरा पोशी प्रेमी को अपने से अलग कर देती है। रमेश वक्शी की कहानी 'खाली' की नायिका जो एक युवक से प्रेम करती है और परंपरा, समाज सब को भूलकर शादी करना चाहती है। वह जानती है कि उसके विवाह को दोनों पक्षों के माता-पिता स्वीकार नहीं करेंगे पर फिर भी वह शादी के लिए तैयार है और प्रेमी से

कहती है- "मैं तुम्हारे बगैर रह नहीं सकती और जो कुछ होगा उसे फेस कर जाने का निर्णय मन में बन गया है। हमें मम्मी-पापा से लड़ना तो पड़ेगा ही लड़ लेंगे, जो कुछ होगा सहेंगे। जो भी जवाब देना होगा देंगे।"[10] अब वह समय ख़त्म हो चुका है जब अपने माता-पिता की मर्जी से बेटी की शादी होती थी, अगर कुछ भी होता था तो वह अपने ही भाग्य को कोसती थी और जिंदगी गुजार देती थी। मगर आज की नारी के साथ ऐसी दारुण स्थिति आती भी है तो उसकी प्रतिक्रिया अति प्रतिशोधात्मक होती है। अर्जिका नारी को लेकर हिंदी कहानी में जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसे एक बाढ़ की स्थिति कहा जा सकता है। अर्जिका स्वरुप ही आज की नारी की नवीनतम पहचान है। इसी स्वरुप के कारण नारी पुरुष की श्रेष्ठता को चुनौती दे रही है। इतिहास के निर्माणकाल से पुरुष का रूप अर्जक तथा नारी का उस पर आश्रिता का रहा है। दोनों के दैनिक कार्यकलाप में बहुत ही अंतर है। 20वीं शताब्दी के आगमन के साथ ही नारी द्वारा अर्जन कार्य शुरू हुआ। सामान्य आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं भारत की स्वतंत्र नारी के मन में नई समानता की भावना ने नारी को घर से निकालकर अर्जन कार्य करने में लगा दिया। फिर धीरे-धीरे अर्जिका नारी समाज का एक सत्य, एक आवश्यकता बन गई। समकालीन हिंदी कहानी का सशक्ततम पक्ष अर्जिका नारी का अन्तरंग चित्रण है। जिस नारी का चित्रण हुआ है, उसमें पारंपरिक नारी सुलभ मृदुता के साथ-साथ कहीं एक गुमान, एक स्वाभिमान भी है, यह मानना ही पड़ेगा। मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी' कहानी की बीना पढ़ी-लिखी और कार्यरत है। वह अपने पति से दबना नहीं चाहती, चाहे कोई भी मामला हो, घर के हो या फिर बच्चे के मामले हो, वह विशिष्ट स्थान चाहती है और न मिलने पर पति से सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है।

नारी के स्वाभिमानी रूप को, साठोत्तरी हिंदी कहानी से पहले साहित्य की कौन सी विधा में पहचाना गया था उसके विषय में कुछ संदेह है। साठोत्तरी हिंदी कहानी में नारी का जो रूप विशेष तौर पर आया है, वह है अर्जन कार्य में लगी हुई नारी का। अर्जिका नारी ही समाज की रूढ़ियों के लिए, मान्यताओं के लिए तथा पुरुष की श्रेष्ठता के लिए एक चुनौती बनी हुई है। उन नारियों को इन कहानीकारों ने चुनौती के स्तर पर स्वीकार किया है तथा उसके जीवन की एक-एक परत को अपनी कहानियों में उधेड़ा है। यही नारी है जो काम की तलाश में भटकती है, काम मिलने पर बहुत कुछ बर्दास्त करनी पड़ती है। साथ ही वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाती है।

"यदि समकालीन हिंदी कहानी में चित्रित नारी को कोई नाम देना चाहे तो वह होगा 'कार्यशील नारी', 'दि वोर्किंग वोमेन' । इस नारी का जीवन तीन आयामी हो गया है । एक ओर तो वह नारी है- उसकी अपनी नारी सुलभ आकांक्षाएँ, सीमाएँ आदि हैं, दूसरी ओर वह भारतीय है- उसके रक्त के कण-कण में भारतीय संस्कार पारंपरिक अपेक्षाएँ एवं पुरुष पर आश्रित होने का भाव समाया हुआ है और तीसरी तरफ वह कार्यशीलता है और उस भूमिका में वह अपनी शताब्दियों से बनी चली आ रही इमेज को तोड़ती है। बहुत पुराने बने बिम्ब को तोड़ना आसान नहीं होता, कभी-कभी तो संभव भी नहीं होता । वह अपनी इन तीनों भूमिकाओं को साथ लेकर चल ही नहीं पा रही है, प्रत्येक स्थिति में -कोई न कोई जटिलता उत्पन्न हो ही जाती है। नारी अब अर्जनशील बन गई है। अतः अब उसका आत्मगौरव पुरुषों से समानता की मांग करता है। पर जब भी एक पुरुष पति की भूमिका में आता है तो उसका व्यवहार नारी के प्रति पारंपरिक पति की भाँति हो जाता है।

समकालीन हिंदी कहानी नारी का जो रूप प्रक्षेपित कर रही है, वह स्वरुप दर्शाता है कि नए भारत की नई नारी अभी स्वयं को समझ रही है, गढ़ रही है । अपनी सम्पूर्ण शारीरिक भावनात्मक दुर्बलताओं की स्वीकृति के अन्दर से ही वह अपने जीवन की सिद्धि चाहती है, आकांक्षाओं की पूर्ति चाहती है और अपने अलग स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना चाहती है । सातवें-आठवें दशक की हिंदी कहानी यह विश्वास दिलाती है कि स्वतंत्र भारत की नारी इसके ही दर्पण में अपना चेहरा देख-देख कर अपना परिष्कार प्रसाधन करती एक दिन अभीष्ट पा लेगी। स्वतंत्रता के बाद से भारतीय समाज में हम स्त्री-पुरुष संबंधों में एक विशेष परिवर्तन देखते हैं। यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण है जिसे स्वातंत्र्योत्तर सभी कहानीकारों ने अपनी-अपनी कहानियों में रूपायित करने का प्रयास किया है । स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्धों को लेकर जितनी कहानियाँ इस युग में लिखी गयी उतनी किसी अन्य विषय पर नहीं लिखी गयीं । समकालीन कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन का चित्रण किया है।

आधुनिक नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व को पा लेने के बाद भी पुरुष के वर्चस्व को किसी न किसी रूप में संभाले हुए हैं। सुबह से शाम तक नौकरी की किट-किट में मर खपकर जब वह घर लौटती है तो उसे अनेक पारिवारिक दायित्व भी निभाने पड़ते हैं – पति से लेकर बच्चों तक, माँ-बाप, भाई-बहन, सास-ससुर, ननद-देवर आदि सभी को तो उससे अतिरिक्त

अपेक्षाएँ हैं। घर और दफ्तर दोनों जगहों पर उसे मानसिक तनाव और संघर्ष को झेलना पड़ता है। मालती जोशी की कहानी 'मध्यांतर' को काम काजी महिलाओं के मानसिक द्वंद्व को चित्रित करने वाली अत्यंत सशक्त कहानियों में रखा जा सकता है। यह कहानी नौकरी पेशा नारी की समस्याओं के बहुआयामी सन्दर्भ के लिए हुई हैं।

आज का मानव वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा और महत्वकांक्षाओं के चलते एकाकीपन से अभिशप्त है। यह प्रतिस्पर्धा की भावना केवल वैयक्तिक स्तर पर न होकर सामाजिक संबंधों के धरातल पर और अधिक विनाशकारी साबित हुई है। व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना ने तो आदमी को आदमी के साथ रहने की प्रवृत्ति को ही खत्म कर दिया है। पारिवारिक व्यवस्था के गुण, पारस्परिक प्रेम, सहयोग की भावना के मूल्य ख़त्म हो गए हैं। फलस्वरूप समकालीन हिंदी कहानियों में संबंधों के धरातल पर अलगाव एवं अकेलापन की भावना उत्तरोत्तर बढती गयी। परंपरागत रक्त संबंधों में भी एक लम्बे समय तक आत्मीयता और ताजगी शेष नहीं रह पाती। भौतिकवादी युग में परिवर्तन की रफ़्तार इतनी तीव्र है कि पीढ़ीगत वैचारिक मतभेद एक-दूसरे के साथ तारतम्य नहीं जोड़ पाते। अब सम्बन्ध रक्त रिश्तों से न होकर अपने स्तरीय लोगों से बनने लगा है। आर्थिक असमानता के कारण एक भाई अपने भाई, एक बेटा अपने पिता का परिचय देने से भी कतराने लगें हैं। अब अपनों के बीच के धरातल पर आर्थिक सौदेबाजियाँ होने लगी हैं। आज अपने से बड़े लोगों से संपर्क अतिरिक्त प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान का विषय बन गया है। से. रा. यात्री की कहानी 'रिश्तें' में एक भाई अपने भाई के घर उत्सव में जाने पर अपमान के सिवा और कुछ भी नहीं पाता- "अरे शामलाल तू आ गया ? उन्हें नमस्कार करके वह जैसे ही उनके पाँव छूने आगे बढ़ा, तभी दरवाजे पर आकर एक बहुत खुबसूरत कार ठहरी। शायद उसमें शहर के कोई नामी व्यापारी थे। भाई साहब एकदम खीसे निपोरकर कार का दरवाजा खोलने लपके, मानों कार से दो मिनट पहले रिक्शे पर आने वाला शामलाल कपूर का कोई अस्तित्व ही नहीं था।"[11]

मध्यवर्गीय समाज में धर्म और आध्यात्म के प्रति विशेष लगाव होता है। यही आध्यात्मिक भाव जीवन को पलायन की ओर ले जाता है। मनुष्य निर्विकार की मुद्रा को अपनाता है। मनुष्य अन्दर ही अन्दर घुटता है, टूटता है और उसकी धार्मिक आध्यात्मिक आस्था अधिक मजबूत हो जाती है। मन्नू भंडारी की कथा 'रानी माँ का चबूतरा' में पुराने अंधविश्वासों का खंडन है। "रानी माँ के चबूतरे पर जलाया हुआ दीप कभी भी अकारण नहीं जा सकता है। धनी के गाँव से चिट्ठी आई है। उसका बाँझपन

दूर हुआ है। दूसरी ओर गुलाबी है जो रानी माँ के चबूतरे पर कभी नहीं जाती, किन्तु उसके बच्चे भी हैं, जिनका भरण-पोषण उसकी मूल समस्या है। वह बच्चों को पीटती रहती है और अन्य औरतें उसे चबूतरे पर घर की शांति के लिए जाने को कहती हैं किन्तु वह कहती है कि जिस दिन नशपीटे मर जायेंगे उसी दिन इकट्ठें ही दीया जलाऊंगी।"[12] यह औरतों में व्याप्त अन्धविश्वास पर एक दम सीधा प्रहार नहीं तो और क्या है ? समकालीन हिंदी कहानियों में अंधविश्वासों एवं रूढियों के विरुद्ध गहरा प्रहार है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन को सठीक रूप में प्रकट करने में वह सक्षम है।

राजनीतिक जीवन

स्वतंत्रता के बावजूद भी सरकार की पूंजीवादी नीतियों के कारण आम आदमी आर्थिक दृष्टि से आजाद नहीं हो पाया। आम आदमी का शोषण पूर्ववत् जारी है। समकालीन कहानियों का सर्वहारा वर्ग मानते हैं कि पूंजीवादी राज्य सत्ता ने उसका सब सुख-चैन छीन लिया है। प्रजातंत्र तो जैसे पूंजीपति की सुविधाओं का ही नाम हो गया है। सरकार दिखावे के लिए श्रमिक तथा किसान के हित में कानून पास करती है। परन्तु यह कानून मात्र एक कागज के टुकड़े में ही रह जाती है। अदालतें तो इतनी महँगी हो गयी हैं कि न्याय के लिए फैली हुई आम लोगों की झोली खाली रह जाती है। जनकल्याण के दफ्तर की सार्थकता साइनबोर्ड तक ही रह जाती है। इन सम्पूर्ण अव्यवस्थाओं की जड़ नेताओं का स्वार्थ केन्द्रित दृष्टिकोण है। आजादी के बाद गाँव के लिए विकास योजनाएँ बनी, परन्तु उससे छोटे किसान और खेतिहर मजदूर लाभान्वित नहीं हो पाए। उन योजनाओं का फायदा केवल गाँव के मुखिया, बड़े किसान तथा सरपंचों को मिला। रिश्वतखोरी तथा राजनीतिक पहुँच की बांहें प्रजातांत्रिक युग में काफी लम्बी होती है। सुरेन्द्र सुकुमार की कहानी 'चकबंदी' इसी सच्चाई पर आधारित है। भोला एक छोटा किसान है। उसका जमीन फसल के लिए काफी अच्छा है। इसलिए भोला के खेत पर प्रधान की निगाह है। प्रधान उस गरीब भोला के खेत को अपने चक के अन्दर करवा लेता है तो भोला प्रार्थना पत्र भी देता है परन्तु कहीं भी कारगर नहीं हो पाता। प्रधान की बात हर जगह मानी जाती है क्योंकि वह अफसरों के करीब रहता है। भोला के विरोध के कारण प्रधान भोला के पिता को जेल भिजवा कर अपना बदला पूरा करता है। भोला की आर्थिक स्थिति अब बद से बदतर होती जाती है तो उसे विवश होकर उस गाँव को ही छोड़कर कहीं दूर भागना पड़ता है।

समकालीन कहानीकारों ने शोषण और अन्याय के विरुद्ध आम आदमी के संघर्षकामी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में की है। आज का संघर्ष किसी जाति, वर्ग, पार्टी, प्रान्त, संस्कृति तथा भाषा को लेकर नहीं या उन के दायरों के भीतर न होकर सीधे व्यक्ति विशेष से है। उस आदमी से है जो आदमी को आदमी बने रहने से तथा उसके हक़ से वंचित करते हैं और ऐसी स्थितियाँ-परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं जिससे उसका आदमीपन आहत हुआ है। जो पूंजीवादी साम्राज्य है वे जनसाधारण का खून चूसकर ही खड़ा हुआ है।

समकालीन कहानियों में पूंजीपतियों के खिलाफ मजदूर वर्ग के अन्दर बढ़ता असंतोष, आक्रोश दिन-प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा है। महेश्वर की कहानी 'अपना दुश्मन' का सज्जन भी अपना शत्रु इस पूंजीवादी व्यवस्था को ही मानता है जो रक्षक न बनकर भक्षक बन गया है। शोषण और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की चेतना गाँव के निम्न वर्ग के लोगों में भी आई है। मधुकर सिंह की कहानी 'हरिजन सेवक' में वाजिब मजदूरी की मांग के लिए हरिजन मजदूर एकजुट हुए हैं। वे मजदूर तब तक गाँव के अमीर लोगों के यहाँ काम नहीं करना चाहते जब तक उनकी मांगें मान न ले। बड़े किसान सोचते हैं दो-चार दिन में भूख से ये लोग मरने लगेंगे और इनका मिजाज ठंडा हो जायेगा। परन्तु वे लोग अपने और अपने परिवार के पेट भरने के लिए दूसरा रास्ता निकाल लेते हैं। हर रोज दस मील पैदल चल कर शहर में काम करते हैं और शाम को घर लौटते हैं। इन सब को बड़े किसान बर्दास्त नहीं करते हैं। अंत में वे हरिजनों की झोपड़ी, झुग्गियों में आग लगा देते हैं। तब भागते-भागते जो लोग अपनी जान बचाते हैं, वे बच जाते हैं। तब गाँव में दूसरे दिन पुलिस आती है और पुलिस उन हरिजन मजदूरों पर नक्सलवादी होने का आरोप लगाकर उन मजदूरों को ही जेल भेज देती है। तब वे हरिजन सामंती व्यवस्था से एकजुट होकर लड़ाई लड़ने का संकल्प लेते हैं।

सुरेश कॉटक की कहानी 'पंचित' में भी चमार, मुसहर, दुसाध सामंती व्यवस्था के विरुद्ध मजदूर अपनी मजदूरी को बढाने के लिए सामूहिक हड़ताल करते हैं। भूमिहार सामंत पहले की यथास्थिति को बनाए रखना चाहते हैं लेकिन विवश होकर उन्हें मजदूरी बढ़ानी पड़ती है। समकालीन कहानियों में आम जनता की व्यवस्था के प्रति गहरे असंतोष की अभिव्यक्ति मुखर हुई है। व्यवस्था को अनेक तत्वों द्वारा संचालित करते हैं जैसे पुलिस, संसद, न्यायालय आदि। रिश्वतखोरी, पक्षपात आदि के चलते आम आदमी को न्याय नहीं मिल पाता। इन सबका फायदा सिर्फ व्यवस्था से जुड़े हुए लोगों

तथा पूंजीपति ही उठा सकते हैं। संजीव द्वारा लिखी गई 'अपराध' कहानी के क्रान्तिकारी सचिन इस न्याय व्यवस्था पर सीधा आरोप लगाता है- "मुझे इस पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी में विश्वास नहीं है, आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है वह लुटेरों, पंडों और जूताचोरों से भरा पड़ा हैं।..... वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने खून के धब्बों को छुपाये हुए है। परिवर्तन के महान रास्ते पर एक मुकाम ऐसा भी आएगा जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा वर्ना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी।"[13]

आज पूंजीवादी राज्यसत्ता की शोषण वृत्तियों ने सर्वहारा वर्ग को आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से बदहाल कर दिया है। सत्ता भोगियों ने सब कुछ हड़प लिया इसलिए सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकार के लिए हिंसक क्रांति की आवश्यकता पड़ी। समकालीन कहानियों का साहसी पात्र भ्रष्टाचार, अन्याय और शोषण के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। उसके खिलाफ आवाज उठाता है और संघर्ष करता है। वर्तमान व्यवस्था की बहुत बड़ी विसंगति देश में रहने वाले शिक्षित बेरोजगारी है। वह नवयुवक बेरोजगारी से लड़ते-लड़ते टूट चुका है। सबसे बड़ी दुःख की बात यह है कि योग्यता के आधार पर नौकरी न मिलकर सिफारिश के आधार पर मिलती है। अवसर केवल संविधान की पोथियों में रह गया है। राजनीति में भ्रष्टाचार के सर्वत्र बोल-बाला है। आज राजनीति का लक्ष्य जनसेवा न होकर दोनों ही सत्ता और विपक्ष सरकारी कुर्सी हथियाने का हो गया है। आज राजनीति केवल एक कुर्सी तक ही सीमित रह गयी है। कुर्सी पाने के बाद वे अपना सारा-का-सारा वादा भूल जाता है।

समकालीन कथाकारों का मानना है कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर आदमी न्याय-व्यवस्था में न्याय प्राप्त नहीं कर सकता। जिस न्याय-व्यवस्था में सबूत और गवाही पर पूरी बात टिकी हुई हो। वहाँ जिसके पास पैसा है वह सबूत को नष्ट कर सकता है और गवाहों को आतंक से तोड़ सकता है। भारत में न्यायपालिका के पास आँखें नहीं होती, कान ही मात्र होते हैं और यह कान सच और झूठ को गवाहों के बयान से सुनते हैं। इसराइल की कहानी 'टूटा हुआ' में कचहरी में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दा फाश करती है। कचहरी में देखा जाता है कि लोग नींद में ही लूट मचाये रहते हैं। सामने वाले की ओर ताकते भी नहीं है। नींद में ही हाथ बढ़ा देते हैं, पैसा दो। सोचते भी नहीं कि किस काम के लिए पैसे। कचहरी में घुमने वाले हर आदमी इनको ग्राहक लगते हैं। कितनी बार पैसे दे चूका हूँ, कितने लोगों को मगर मुझे भी नहीं पता कि क्यों दे रहा हूँ। उन्हें भी नहीं पता- क्यों पैसे ले रहे हैं- उनके और मेरे बीच

और पैसों के बीच सुनता हूँ कुछ फाइलें होती हैं? पता नहीं ये क्या होती हैं? कहाँ जाती हैं? पैसों का इंजन ही इन्हें खींचती है। आज न्यायपरायणता और ईमानदारी जैसे जीवन-मूल्य आज के युग में अप्रासंगिक हो गए हैं। इन पर आचरण करने वाले व्यक्ति दरिद्रता तथा उपेक्षा की नियति ढोने के लिए विवश है।

समकालीन कहानी का मूल स्वर इसी मामूली आदमी की मानसिकता, तकलीफ, सीमाओं और संभावनाओं का तटस्थ अंकन है। अपनी समस्त दुर्बलताओं, विवशताओं और विसंगतियों में जीता जागता मामूली आदमी हर विषम स्थितियों से संघर्ष करता नजर आता है। श्रमिक वर्ग भी आम आदमी के अंतर्गत ही आता है जो अपने जीविका का मुख्य आधार मेहनत-मशक्कत से करते हैं। इस वर्ग का व्यापक प्रतिनिधित्व समकालीन कहानी में हुआ है। सिद्धेश की कहानी 'आतंक' परस्पर मजदूरों की संघर्ष और मिल मालिक के स्वार्थपूर्ण रवैये से सम्बंधित है जिसमें मिल मालिक के आज्ञाकारी नौकर पर छाया हुआ आतंक को एक लाख इंश्योरेंस करा कर दूर किया जाता है। किन्तु मजदूर रोजीरोटी और अपने हक़ के लिए लड़ता है इसलिए उसे रोजी-रोटी के सामने मौत का आतंक गौंण और फीका लगता है। अंत में मजदूर का कुछ भी नहीं चलता। उसे फटेहाल जिंदगी जीने के लिए विवश होना पड़ता है।

समकालीन कहानियों में मजदूर अपने हक़ की लड़ाई में भागीदार साथियों के साथ गद्दारी मक्कारी न करके सामूहिक शिरकत करता है, क्योंकि वह आज इस बात से पूरी तरह वाकिफ हो चुका है कि साधन संपन्न लोगों के खिलाफ बिना एकजुट संघर्ष के कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता है। ये लोग व्यवस्था द्वारा पाले गए लोग आसानी से घुटने टेकने वाले नहीं हैं। जब इनकी हिफाजत के लिए संसद-न्यायपालिका से लेकर पुलिस तक एक पैर पर खड़ी है। इन्हीं कारणों से इनके विरुद्ध खड़ा होने का दुस्साहस के साथ-साथ इनके षड्यंत्रों से भी सचेत रहना आवश्यक है।

पूंजीपतियों के फूट और दमन के कूचक्र से मजदूर कैसे अपनी लड़ाई की रक्षा करता है तथा अपने नेता को जो उसकी आँखों का तारा है बचाता है, इसे 'देवीसिंह कौन' कहानी में रमेश उपाध्याय ने दिखाया है। इस कहानी में हर मजदूर अपने को देवीसिंह बतलाता है। उदय प्रकाश की 'टेपचू' अपनी रचना-प्रक्रिया में मजदूर वर्ग पर लिखी जाने वाली ढेरों कहानियों में से एकदम अलग है। यह कहानी अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' से कुछ स्थितियों में बेहतर और मेल खाती चलती है।

बेहतर इस सन्दर्भ में कि 'टेपचू' अपने युग का सामाजिक यथार्थ बदलता हुआ समय की मांग बन गया है । इसी प्रकार समकालीन कहानियों में महेश्वर की कहानी 'मृत्युदंड' हिंसा और तोड़फोड़ की कार्यवाहियों के मूल कारणों को रेखांकित करती हैं । यह सब हिंसात्मक कार्यवाहियाँ इसलिए होती हैं कि ये व्यवस्था से खिलाफत करते हैं । जो पूंजीपतियों और उनके दलालों की हिफाजत करती हैं । महेश्वर की ही दूसरी कहानी 'अपना दुश्मन' में राजन भी अपना शत्रु इस पूंजीवादी व्यवस्था को ही मानता है- "उस लिजलिजे का पुरुष को जो पुलिस की कालि गाड़ियों और संगीनों से लैस सिपाहियों के पीछे छिपा हुआ है जो बैंकों के सैफवाल्टों में घुस गया है, जो स्काई स्क्रिपेर्स के गुम्वादों पर भागकर खड़ा हो गया है.... जो कला और आध्यात्म के नाम पर आदर्श और दर्शन के मुखौटे लगा कर सच्चाई को झुठलाने की लगातार कोशिश कर रहा है ।"[14] आज के समय में आम आदमी भी यह बात को जान लेगी कि जब तक व्यवस्था कायम है तब तक वे अपने हक़ को हासिल नहीं कर सकता क्योंकि यह वही व्यवस्था है जो पूंजीपतियों को संरक्षण देती है और उन लोगों की सुरक्षा करती है । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन कहानीकारों ने आज के समाज में हो रहे राजनीतिक जीवन को बखूबी से व्यक्त किया है ।

आर्थिक जीवन

स्वतंत्रता के बाद मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष और उसका अंतर्द्वंद्व आधुनिक जीवन में निरंतर बढ़ता ही जा रहा है । मध्यवर्ग को निरंतर संकट के क्षणों से गुजरना होता है । उसे पग-पग पर अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है । जिजीविषा ही उसका अंतर्द्वंद्व है इसलिए वे भटकाव देता है । यही कारण नई कहानी में मध्यवर्ग ही केन्द्रित चरित्र हो गया और मध्यवर्गीय जीवन की विविधताओं, टूटन और अकेलेपन से उपजी असंगतियों को ही नयापन मान लिया गया है । कहानी में अकेलापन विशेषतया मध्यवर्गीय अकेलेपन को आवश्यक विधान के रूप में प्रस्तुत किया गया । इसके पीछे जीवन से पलायन का भाव, निराशा तथा कुंठाओं की स्थितियों ने अजीबोगरीब चरित्रों को कहानी का प्रतिनिधि चरित्र बना दिया ।

मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विड़म्बना यह है कि वह व्यवस्था के यथास्थितिवाद का समर्थक होते हुए भी व्यवस्था के आतंक और भय से आक्रांत दिखलाई पड़ता है । मध्यवर्ग में सबसे बड़ा हिस्सा क्लर्कों का होता है । "सरकारी और गैरसरकारी दफ्तरों में एक ही प्रकार के काम पूरी जिंदगी भर करते

तथा अपने आर्थिक एवं पारिवारिक संकटों से जूझते-जूझते क्लर्कों का जीवन अभाव, पीड़ा एवं असंतोष के साथ बीत जाता है। क्लर्कों को अपनी तरक्की के लिए साहबों की खरी-खोटी सुननी पड़ती है। छल-कपट और झूठ-फरेब करने पड़ते हैं। एक-दूसरे की चुगली करनी पड़ती है। साहब के हाँ में हाँ मिलाना पड़ता है।"[15] इन कलर्कों को शालीनता एवं घिघियाने का नाटक भी करना पड़ता है। आधुनिक औद्योगिक समाज में कलर्कों की जिंदगी की बहुत ही बुरी स्थिति है। आर्थिक तंगी इस वर्ग की प्रमुख समस्या है। वह नौकरी के द्वारा जो कुछ पाता है, उससे वह न परिवार को ठीक तरह से पाल सकता है और न कोई अपनी इच्छा ही पूरी कर सकता है। वह हमेशा जिस-तिस के सामने हाथ फ़ैलाने में विवश है अगर एक बार वह किसी के बोझ के नीचे दब जाता है तो अन्याय के नीचे दबने को विवश हो जाता है। मोतीलाल जोतवाणी की कहानी 'एक अदना ख्वाहिश' में मतिराम दफ्तर आने के लिए मात्र एक साईकिल भी नहीं खरीद पाता है। वह अपनी इस छोटी सी इच्छा के लिए दफ्तर के अफसरों के आगे घिघियाता है परन्तु उसके दरख्वास्त को कोई भी नहीं सुनता। वह आज भी बसों की धक्कामुक्की सहने के लिए विवश है। आम आदमी के जीवन के इन्ही सच्चाइयों को समकालीन कहानियों में दर्शाया गया है।

आज आम आदमी के अन्दर जो गुस्सा और आक्रोश पनपने का मुख्य कारण आर्थिक तंगहाली का दुखदर्द ही है। वह अपने जीवन की आवश्यकताओं के लिए तथा उसे पूरा करने के लिए जुटा हुआ है पर फिर भी वह अपनी आवश्यकताओं को जुटा सकने में असमर्थ है। वह आज एक भयंकर दुःख भरी जिंदगी जीने को मजबूर है। स्वदेश दीपक की 'तमाशा' कहानी में समाज के अत्यंत निम्नस्तरीय जीवन जीने वाले मदारी, भिखारी वर्गों की गरीबी, आर्थिक समस्याओं पर एक दृष्टि डाली गई है, जो पेट की भूख के लिए मदारी का खेल दिखाने में अपने बेटे के पेट में छुरा भोंक देता है। यह गरीबी का सबसे घिनौना रूप है। अभाव में ग्रस्त होकर जीवन बिताने के कारण इस वर्ग के व्यक्तियों में स्वप्नवादिता दिखाई पड़ती है। इस वर्ग के लोग अपनी स्थिति से उठने का प्रयास हर हाल में करते रहते हैं पर वे असफल ही रहते हैं। ये अपनी स्थिति को न समझ कर अपने से ऊँचें वर्गों की नक़ल करते रहते हैं। आर्थिक तंगी, परवशता, घुटन, विलासिता इस वर्ग का सामान्य संकट है। आय से अधिक व्यय होने के कारण इस वर्ग की छोटी सी इच्छा भी कभी पूर्ण नहीं हो पाती। वह अपनी यथास्थिति को छिपाने का जितना अधिक प्रयास करता है, उतना ही वह नंगा होता जाता है। धर्मेन्द्र

गुप्त की कहानी 'अपंग संज्ञा' का कथानायक भी एक मामूली सी कलर्क है और वह अपना सम्बन्ध अपने से उच्च वर्ग के लोगों से ही करता है और अपने को बड़ा और बुद्धिजीवी साबित करने के लिए उधार और क़िस्त पर रेडियो, फ्रिज आदि खरीदता है। अपने को ऊँचा साबित करने के लिए बेबजा दूसरों पर ध्वज जमाता है तथा गालियाँ देता है। अपनी कमजोरी को दूसरों पर आरोपित कर आधुनिक और क्रन्तिकारी बनना उसका स्वाभाव बन जाता है।

समाजवादी सरकार की घोषणाओं और योजनाओं से लगता है कि अब आम आदमी की हालत सुधारने में कोई देर नहीं है जो भारत के राष्ट्रीय स्वरुप को ध्यान में रखकर आम आदमी के लिए बनाई गई है। जिन योजनाओं के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में गरीबी को हटाने के लिए काम के बदले अनाज लघु एवं कुटीर तथा भूमिहीन एवं बेरोजगार नागरिकों को ऋण सुविधाएँ आदि योजनाएं बनाई जिससे आर्थिक स्थिति अच्छी बने, परन्तु सारी योजनाओं का फायदा तो उनको नहीं मिल रहा है तो किनको मिल रहा है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी के पास नहीं है। इस सच्चाई को उद्घाटित इब्राहीम शरीफ की कहानी 'युगांतर' करती है। इस कहानी में कथानायक समाजवाद के सपनों को अपने अन्दर पालता है। एक दिन वह अख़बार की सुर्ख़ियों में पढ़ता है कि देश के प्रधानमंत्री ने अपने मंत्रियों की मीटिंग में यह फैसला किया है कि देश भर के बड़े-बड़े पूंजीपतियों की जमीन जायदाद अपने कब्जे में कर लिया जायेगा और उसे देश के गरीब तबकों में बाँटकर उसका आर्थिक स्तर सुधारा जायेगा। उसका जी इस खबर से बहुत खुश होता है और तब उसे लगता है कि अब गरीबों की आर्थिक संघर्ष का अंत शीघ्र ही होने वाला है। पर जब उसकी पत्नी कहती है कि क्या सरकार वाली इंदिरा जी भी हम जैसे गरीब हैं? और क्या सरकार के सभी लोग गरीब हैं? तो फिर वह सोचने लगता है। तब उसकी मनः स्थिति बिगड़ जाती है।

समकालीन कहानी वर्तमान यथास्थितिवादिता के विरुद्ध आर्थिक मजबूरियों के तहत समाज में फैलते व्यभिचार को इंगित करती है। यह मान्यता काफी मजबूत लगती है कि आर्थिक आराजकता से ही सेक्स लम्पटता का इंद्रजाल फैलता है। इस आर्थिक आराजकता के चलते ही आज कर्त्तव्यनिष्ठ नारी भी इस पेशे को अख्तियार करने के लिए विवश हो जाती है। निरुपमा सेवती की कहानी 'मुद्धिमुष्टि' में कामकाजी लड़की की व्यथा एवं विवशता का यथार्थ चित्रण है। इसमें अपने होटल के ग्राहकों को खुश रखने के लिए सौ-सौ के छह पत्ते इसलिए पाती है कि वह ग्राहकों की द्विअर्थक बातों

और अश्लील कटाक्षों को बर्दास्त करके भी मुस्कराए। उसे यह अहसास बहुत अधिक सालता है कि सुन्दरता और तंगहाली साथ-साथ हो तो इससे ज्यादा मुसीबत दूसरी नहीं। यह दर्द उस समय और अधिक कष्टप्रद हो जाता है जब परिवार में उसे सुख, चैन और सम्मान के बदले तिरस्कार के साथ बदचलन का ताना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में लड़की घर के नरक से बेहतर दफ्तर के नरक को मानती है। दफ्तर उसे बेहतर नरक इसलिए लगता है कि कम-से-कम वह आर्थिक तंगी से मुक्त कराता तो है।

महानगरों में जहाँ एक तरफ लिफ्टों वाली ऊँची-ऊँची बिल्डिंग है, उन पर रात को रंगबिरंगी रोशनियाँ जलती हैं, वहीं दूसरी तरफ गन्दी खोलियों में रहने वाले मजदूर परिवार की स्त्री, बच्चें हैं जो आदमी कम जानवर अधिक लगते हैं। कृष्ण बलदेव वैद्य की कहानी 'एक बदबूदार गली' के कथानायक के माध्यम से इन गंदे लोगों का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। फिर आधुनिकता के कायल बड़े लोग या तो इस गली से गुजरते ही नहीं, अगर बाईचांस गुजरते भी हैं तो नाक पर रुमाल डाल लेना नहीं भूलते हैं। इस कहानी में यही दिखाया गया है कि किस तरह से इन गरीबों को देखा जाता है।

आज अर्थ के चलते स्त्री-पुरुष संबंधों में भी वह गर्माहट नहीं बल्कि एक अजीब ठंडक महसूस होती है। पति-पत्नी एक लम्बे अरसे बाद भी मिलने पर सहज नहीं हो पाते क्योंकि दोनों अपनी-अपनी आर्थिक विवशताओं से आक्रांत है। गिरिराज किशोर की कहानी 'ठंडक' में दीर्घ प्रवास के बाद लौटा पति घर की स्थिति का जायजा लेने की चेष्टा में अपने वर्तमान सुख को नहीं जी पाता और पत्नी यही सोचती रह जाती है कि ये परदेश में कैसे रहे होंगे। समस्याओं की आर्थिक विवषताओं वाला रूप अनेक संबंधों में एक ठंडक ला देता है।

अखिलेश की कहानी 'चिट्ठी' वर्तमान मध्यवर्गीय जीवन का उजागर करती है। "आज के औसत मध्यवर्गीय नवयुवक के जीवन में विद्रोह तभी तक है जब तक उसे अच्छी नौकरी नहीं मिल जाती। नौकरी का नहीं मिलना जैसे युवा मानसिकता के तथाकथित विद्रोह का एक मात्र कारण हो गया है और नौकरी मिल जाए तो जैसे जीवन में सब कुछ ठीक है। कहीं अभाव नहीं है, कहीं शोषण नहीं है। नौकरी नहीं मिलने के कारण ही वे पढ़ाई में लगे हैं। नौकरी मिल जाए तो जैसे आज ही पढ़ाई छोड़ दें। इस प्रकार मध्यवर्गीय बौद्धिक वर्ग निरंतर आत्मनिष्ठ होता जा रहा है।"[16]

समकालीन कहानियों में वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं समानता का प्रबल समर्थन मिलता है, क्योंकि वामोमुख साहित्य में जो नई मानव के प्रतिभा अंकित हुई है, उसका मूल रूप स्वतंत्रता है, आर्थिक अभाव से स्वतंत्रता। इस प्रकार की श्रेणी मूलक समाज में साधारण या शोषित जन की स्वतंत्रता का अर्थ है क्रांति द्वारा वर्ग-वर्ण विहीन समाज की स्थापना नहीं मिल सकती। वाम संस्कृति के प्रथम कोटि स्वतंत्रता है। भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की परिकल्पना संविधान के पन्नों में मात्र दर्ज होकर रह गई हैं। इस स्वतंत्रता का लाभ सिर्फ साधनों या संबंधों से समृद्ध व्यक्ति ही उठा सकता है। आज के नवयुवकों में खास कर यह विद्रोह की आग उग्र से उग्रतर होती जा रही है।

इब्राहीम शरीफ की कहानी 'कथाहीन' की लड़की अपने पिता का घर छोड़कर केरल के एक शहर में रहती है। वह बेरोजगार है परन्तु फिर भी वह अपने घर नहीं जाना चाहती क्योंकि उसका पिता उसकी बड़ी बहन को महज पैसों की लालच में अपने दोस्तों के साथ मुंबई भेज देता है। उसका प्रेमी विदेश में जाकर शादी रचा लेता है। तब वह कहती है कि "डिग्री अपने देश में नौकरी पाने का कोई आधार नहीं हो सकती है। आप भी इस बात को जानते हैं, केरल हिंदुस्तान से बुरी नहीं है.... यहाँ भी नौकरी पाने के और जरिये हैं जो मुझ जैसी लड़की के बूते के बाहर है। आप जानते हैं यहाँ किसी प्राइवेट स्कूल में..... नौकरी पाने के लिए मोटी रिश्वत देनी होती है और सरकारी स्कूलों में इससे पहले मुझे अपने बाप को अफसर बनाना होगा, तगड़ा अफसर।"[17] जब तक समाज का संचालन और नियमन इस पूंजीपतियों एवं भ्रष्ट लोगों के हाथ में रहेगा तब तक वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं समानता नहीं आ सकती। ये अर्थ के चलते आदमी की इज्जत, आबरू का सौदा करते रहेंगे। आज प्रतिभा से संपन्न, योग्यता तथा डिग्रीयों को लेकर कोई आदमी अपने लिए दो वक्त की रोटी भी नहीं जुटा सकता। तब वे नवयुवक अवैधानिक काम कर डालते हैं। आज वैयक्तिक स्वतंत्रता का सर्वत्र हनन हो रहा है। अपने कर्तव्यों के प्रति जो निष्ठावान होते हैं उनको भी प्रत्येक जगह संघर्ष करना पड़ रहा है। तब उन्हें अपने-आप को अकेला महसूस होता है। इस अर्थप्रधान युग में शरीर से लेकर स्वाभिमान तक की सौदेबाजी होती है। इस तरह के दमघोटू माहौल में भी भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण के खिलाफ लड़ने वालों की संख्या कम हो सकती है परन्तु पूर्णयता समाप्त नहीं। समकालीन कहानीकारों ने ऐसे पात्रों के प्रति अपना विशेष प्रेम और लगाव, समर्थन और सहयोग दर्शाया है। हिमांशु जोशी की कहानी 'जलते हुए डैने' के शिवद अपने वैयक्तिक विचारों को मौत की सजा के डर से भी बदलने को तैयार नहीं

होते। वे सच्चाई का साथ देते हैं और उस रास्ते पर चलकर मर जाना बेहतर समझते हैं। सच्चाई और ईमानदारी की प्रतिमूर्ति शिवद अदालत में स्पष्ट तौर पर बयान देता है- "मैंने जो कुछ भी कहा, सच कहा था, सच बोलने की सजा अगर दंड है तो मुझे वह भी मंजूर है।"[18] तब शिवद को अदालत सजा देती है। उन्हें काल कोठरी में बंद कर दिए जाते हैं, लेकिन अपने मरते दम तक अपने विचारों के साथ समझौता नहीं करते। आज ईमानदारी की कोई कीमत नहीं है। हर जगह चाहे दफ्तर हो या कार्यालय हो, बिना पैसे एक भी काम नहीं होता।

पारिवारिक जीवन

समकालीन कहानीकारों में से अधिकांश मध्यवर्गीय है। इसलिए इन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं और सोच को अपनी कहानियों में प्रमुखता दी है। इस वर्ग की सबसे बड़ी समस्या तो आर्थिक संघर्ष ही है। जिसका असर उसके पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। स्वतंत्र भारत में क्रमशः शिक्षित स्त्रियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ी है, जिसे हिंदी में कवयित्रियों तथा कथा लेखिकाओं की संख्या से प्रमाणित किया जा सकता है। इन लेखिकाओं के आने से पारिवारिक संबंधों पर लिखना शुरू हुआ है। जब लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में भारतीय परिवेश में अपनी मुक्ति के लिए छटपटाती नारी का चित्रण किया है। इस दृष्टि से मणिका मोहिनी की कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके स्त्री पात्र 'बोल्ड' हैं। वे भारतीय नारी की तरह पति को अपनी अंतिम नहीं मानती बल्कि उसके साथ बराबरी का रिश्ता बना कर रहना चाहती है। उनकी कहानियों का यह कथ्य उनका कोई वैचारिक निष्कर्ष नहीं है, अपितु स्वानुभूति सत्य है। इनके ठीक विपरीत कमल कुमार वैचारिक स्तर पर स्त्रीवादी हैं, परन्तु उनके अनुभव ने उन्हें स्थितियों के साथ सामंजस्य बिठाने का विवेक भी दिया है। इसलिए उनकी कहानियों में मानवीय पारिवारिक संबंधों के प्रति आग्रह है। उनके स्त्री पात्र पुरुष-वर्चस्व का विरोध करती हैं परन्तु उसके साथ ही स्त्री के ममत्व को भी स्वीकार करते हैं।

समकालीन कहानियों में कहानीकार ने अपनी लम्बी कहानियों में व्यक्ति और परिवार के यथार्थ-संघर्ष को समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने की ओर बढ़ावा दिया। उनकी उन कहानियों का विषय व्यक्ति का अकेलापन, हताशा और फ्रस्टेशन है। कतिपय ऐसी कहानियाँ भी सामने आयीं, जो अपने हेतु और अपने संवेद्य विचारों में, अर्थात् अपनी आतंरिक उपलब्धियों में पूर्णतः स्वस्थ हैं। हिंदी

कहानियों में एक ओर महानगरों के उच्च परिवारों का जीवन चित्रित किया जा रहा है तो दूसरी ओर गांवों के गाय-बैल तक की कहानी भी है। महानगरों की भीड़-भाड़ और व्यस्त एवं तीव्र गति से चलने वाले जीवन में पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, भाई-भाई तक एक दूसरे के लिए अजनबी और अपरिचित से हो गए। वे थोड़ी देर के लिए मिलते हैं और फिर अपने-अपने काम पर चले जाते हैं। उनलोगों के पास एक-दूसरे के लिए समय ही नहीं है। इन विभिन्न परिस्थितियों को लेकर हिंदी में अनेक कहानियाँ लिखी गई है।

ग्रामीण जीवन

समकालीन हिंदी कहानियों में जिस ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण किया गया है, वह मूलतः अस्सी के दशक के बाद की है। प्रेमचंद की रचनाओं में जिस तरह से हम आजादी से पहले के भारतीय ग्रामीण समाज की तस्वीर देख सकते हैं तो रेणु के माध्यम से आजादी के बाद की। रेणु 'मैला आँचल' के माध्यम से न केवल गांधीवाद की प्रासंगिकता के समाप्त होने की बात का यथार्थ वर्णन कर रहे हैं अपितु ग्रामीण समाज में कैसे-कैसे गठजोड़ बने हुए हैं और बन रहे हैं, उनका भी वर्णन करते हैं। समकालीन हिंदी कहानियों में भी विड़म्बना है और इस बात का दुःख भी शामिल है कि ग्रामीण समाज आज भी उसी हालत में है जैसे प्रेमचंद के समय में था। प्रेमचंद ने जिन समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से दिखाया था वह गांवों में आज भी किसी न किसी रूप में बनी हुई है। इन समस्याओं में चाहे बचपन में शादी करने की समस्या हो या गाँव की ऊँची जातियों द्वारा निचली जातियों का शोषण करने का मामला या उनकी बहन-बेटियों के साथ जबरदस्ती करने की बात। यह सारी बातें आज भी किसी न किसी रूप में ग्रामीण समाज में बनी हुई है। अगर अंतर है तो वह है समाज के निम्न वर्ग के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता को लेकर।

1. ग. शिवमूर्ति : व्यक्तित्व और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय

व्यक्तित्व :

व्यक्तियों की अनुभूतियों का सीधा सपाट ही साहित्य है। व्यक्ति की जो अनुभूति होती है, वह उसके संचित अनुभवों का निचोड़ है, यह अनुभव व्यक्ति को अपने परिवार, समाज और परिवेश से मिलता है। हर व्यक्ति के निर्माण के मूल में ये सारे तत्व काम करते हैं। व्यक्तित्व व्यक्ति के सम्पूर्ण

मानसिक और शारीरिक संगठन का नाम है, हर व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके परिवेश का बड़ा हाथ रहता है।

उत्तर भारत के ग्रामीण जनजीवन, किसानों, मजदूरों, स्त्रियों तथा दलितों की दयनीय स्थिति, शोषण एवं दमन को प्रभावी ढंग से चित्रित करने वाले कथाकार शिवमूर्ति का जन्म गाँव कुरंग, जिला सुल्तानपुर (उ.प्र) में 11 मार्च 1950 को एक किसान परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम महावीर तथा माता का नाम रामरती देवी था। जब शिवमूर्ति की उमर खेलने-कूदने की थी तभी उनके पिता साधू का चोला धारण करके पलायन कर गए, इसके चलते 13-14 वर्ष की आयु में ही घर के मुखिया बनने तथा आर्थिक संकट व जान की असुरक्षा से दो-चार होने का अवसर मिला। उन्होंने आजीविका जुटाने के लिए जियावान दर्जी से सिलाई सीखी, बीड़ी बनाई, कैलंडर बेचे, बकरियाँ पालीं, ट्यूशन पढ़ाया और नरेश डाकू के गिरोह में शामिल होते-होते बचे। वे अपने पिता को घर वापस लाने के प्रयास में गुरुबाबा की कुटी पर आते-जाते खंजरी बजाना सीखा जो आज भी उनका सबसे प्रिय वाद्ययंत्र है। बचपन से ही शिवमूर्ति बड़े होशियार थे। पूरे परिवार का भविष्य उनपर निर्भर था, घर के अभावों ने उस बालक को काफी जिम्मेदार बना दिया था। बड़ों के समान निर्णय लेने की क्षमता बचपन में ही उनको प्राप्त हुई।

शिक्षा

शिवमूर्ति को बचपन में सबसे अप्रिय कार्य स्कूल जाना लगता था, जिसके कारण बार-बार घर से भागते रहे। स्कूल के लिए निकलते तो रास्ते के किसी पेड़ पर चढ़ कर छुपते तो कभी किसी तालाब में नहाने उतर जाते। शिवमूर्ति की प्रायमरी शिक्षा अपने ही गाँव के स्कूल 'प्राइमरी पाठशाला दुर्गपुर' में 1962 ई. में हुई। उन्हें हाई स्कूल की शिक्षा के लिए शहर जाना पड़ा। उनकी हाई स्कूल के शिक्षा सन् 1968 में 'महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज' से हुई। उन्होंने बी.ए. की शिक्षा 'गनपत सहाय डिग्री कॉलेज' से सन् 1970 में पूरी की। शिवमूर्ति ने बचपन से ही अभावों का सामना किया था। वे एक निर्धन परिवार के सदस्य थे। छोटी आयु में ही पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ उनके कन्धों पर आ पड़ा। उन दिनों वे खर्च चलाने के लिए पढ़ने के साथ-साथ काम भी करते थे।

विवाह

शिवमूर्ति की शादी छह (6) साल की उमर में ही सरिता के साथ हो गई थी। फिर विवाह के 11 वर्ष बाद गौना होकर सरिता उनके घर पर आई थी। जब वे बी.ए. में थे, तभी उनकी पहली बेटी पैदा हुई थी। फिर धीरे-धीरे करके परिवार बढ़ता गया, अब उनके 6 बेटियाँ और एक बेटा है। उनकी बेटियों का नाम है- डॉ रेखा पाल, डॉ. पूनम पाल, नीलम बघेल, श्वेता पाल, डॉ. मधुलिका पाल और डॉ. शिवानी। उनका एक ही बेटा है जिसका नाम प्रतीक पाल है। उनका वैवाहिक जीवन सुखमय है।

नौकरी

आर्थिक अभाव शिवमूर्ति को खूब सताता रहा। उससे मुक्ति पाने के लिए उन्होंने कुछ समय तक अध्यापन और रेलवे की नौकरी की, जिससे आर्थिक अभाव में कुछ राहत मिली। अध्यापन और रेलवे की नौकरी करने के बाद उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग में चयनित होकर सन् 1977 ई. में बिक्री-कर अधिकारी के रूप में स्थायी जीविकोपार्जन से लगे तथा मार्च 2010 ई. में एडिशनल कमिश्नर के पद से अवकाश प्राप्त की। 1977-2010 ई. के बीच में कई पदों पर कार्य किया, जैसे फील्ड टैक्स ऑफिसर, डिप्टी कमिश्नर, ट्रेडिशनल कमिश्नर आदि।

शिवमूर्ति का व्यक्तित्व शील, विनय, दया, योग्यता, व्यावहारिकता आदि गुणों से युक्त है। शिवमूर्ति सबसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करने वाले तथा औरों के प्रति मन में द्वेष न रखने वाले महान व्यक्ति हैं। अनेक प्रकार के अनुभवों से वे संपन्न हैं। विरासत में मिली दर्द ने इन्हीं अनुभवों को अनुभूति में परिणत किया। इन सब का प्रभाव इनकी कृत्तियों पर देखा जा सकता है। वैसे भी यथार्थ को समझने के लिए बाजार से किसी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र को खरीदकर नहीं लाना पड़ता, बस अपनी संवेदना को ही व्यापक जीवन से जोड़ना होता है और शिवमूर्ति की भाव-संवेदना इस योग्य उन्हें बनाती है कि वे साहित्य को बृहत्तर जीवन से जोड़ सके। कहानियों में अनुभव का सच भी इसलिए जटिल है और अनुभूत सत्य है जो जीवन-जगत की कल्पना पर नहीं बल्कि उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है।

कृतित्व

किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व की झलक उसके कृतित्व में दृष्टिगोचर होती है। शिवमूर्ति ने भी आस-पास के परिवेश को अपना रचनागत परिवेश बनाया, इसलिए उनकी कृतियों में उत्तर भारत

के ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। अपने लेखन के बारे में शिवमूर्ति ने कहा है- "कहानी का उद्देश्य अपने वर्णन की सघनता से पाठक की संवेदना जगाना और उसके भीतर बेचैनी पैदा करना होता है। यदि आपकी रचना से पाठक के मन में अन्याय के प्रति प्रतिरोध की मानसिकता बनती है तो सही अर्थों में यही आपके लेखन की सफलता है। लेखक को कहानी में समाधान देने से बचना चाहिए, इसके बजाय उसे कहानी को ऐसी निष्पत्ति तक पहुँचाना चाहिए जो पाठक में निर्णय लेने या समाधान खोजने की इच्छाशक्ति पैदा करे।"[19]

शिवमूर्ति का रचनाकाल दीर्घ है। 1968-69 ई. में प्रकाशित उनकी पहली कहानी 'पानफूल' से लेकर आजतक व्याप्त है। लगभग पैंतालिस वर्षों के रचना-समय में शिवमूर्ति की रचनाओं की सूची अति संक्षिप्त है। 1980 ई. में धर्मयुग में 'कसाईबाड़ा' का प्रकाशन हुआ। 1991 ई. में 'केशर-कस्तूरी' शीर्षक से कहानी संग्रह का प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से हुई। इसके आलावा तद्भव के अंक 24 (अक्टूबर 2011) में 'ख्वाजा ओ मेरे पीर' तथा 2013 ई. में 'बनाना रिपब्लिक' कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, जिसमें दस कहानियाँ हैं। वही 1995 ई. और 2004 ई. में क्रमशः 'त्रिशूल' और 'तर्पण' नामों से उनके उपन्यास प्रकाशित हुए जो राजकमल प्रकाशन से हुआ है और नया ज्ञानोदय प्रकाशन से 2008 ई. में 'आखरी छलांग' नामक एक और उपन्यास का प्रकाशन हुआ है। 'कुच्ची का कानून' प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'तद्भव' के 32 वें अंक अक्टूबर 2015 ई. में छापी है। 'मेरे साक्षात्कार' नाम से 2013 ई. में 'किताबघर प्रकाशन' नई दिल्ली से उनके साक्षात्कार प्रकाशित हुआ। शिवमूर्ति की आत्मकथा 'सृजन का रसायन' शीर्षक से 2014 ई. में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। हालाकि वे इसे अपनी आत्मकथा नहीं मानते, केवल एक रचना ही मानते हैं।

शिवमूर्ति की कहानियों में उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन के बहाने सम्पूर्ण भारतीय ग्राम्य-जीवन की मुकम्मल तस्वीरे हैं। उनकी कहानियों में पिछले पैंतालिस-पचास वर्षों के भारतीय गांवों की बदरंग तस्वीर आंकी गयी है। उन्होंने गांवों की नई समाजशास्त्र को प्रस्तुत किया है। जहाँ सामाजिक तथा पारिवारिक विघटन है तो सवर्णों का दलितों पर अत्याचार और दमन है। आजाद भारत में भी गाँव के दलित-पीड़ित वर्ग के लोग अपनी आजादी के लिए तरस रहे हैं। उन्हें सामाजिक, आर्थिक स्तर पर शोषित होना पड़ता है। शिवमूर्ति की कहानियों में अभिशप्त मानव-जीवन का दस्तावेज है तो उसे अभिशप्त बनाने वाली क्रूर, निर्मम, शोषक शक्तियों की चालाकियाँ और साजिशें भी है। कूपोषण,

बीमारी से ग्रसित जन-जीवन का आतंकवाद है तो अन्धविश्वास और रुढ़ियों से पीड़ित आम जनता का भी चित्रण हुआ है। दलित समाज और नारी-जीवन की त्रासदियों को शिवमूर्ति ने जिस सामर्थ्य और संवेदना के साथ चित्रित किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

'कसाईबाड़ा' शिवमूर्ति की प्रमुख कहानियों में से एक है। कहानी के शीर्षक से ही स्पष्ट पता लगता है कि किस प्रकार कसाई अपने स्वार्थ तथा फायदे के लिए किसी बेजुबान जानवर को काट डालता है ठीक उसी प्रकार इस कहानी में भी प्रधान ने अपने फायदे के लिए आदर्श विवाह के नाम पर सामूहिक इन्टरकास्ट मैरिज करवाई, जहाँ कन्या पक्ष हरिजन थे। इस विवाह के करवाने के पीछे प्रधान की एक बड़ी गन्दी चाल थी। जहाँ लीडर अपनी महत्वाकांक्षाओं के लिए शनिचरी नाम की एक दलित स्त्री की व्यथा का फायदा उठाता है। लीडर पेशे से प्राइमरी स्कूल में मास्टर हैं परन्तु पेशे से नफा नहीं होता तो वह एम.एल.ए व मिनिस्टर बनना चाहता है। वे इसका अभ्यास परधानी के चुनाव में करना चाहता है। जिसके लिए वर्तमान परधान खिरोघर सिंह उर्फ़ के.डी. सिंह को हराना आवश्यक है और सभी मामला इसी परधानी चुनाव के इर्द-गिर्द घूमता है। फिर छोटे क्षेत्र में बड़ी राजनीति शुरू होती है जहाँ लीडरजी शनिचरी नामक एक दलित महिला को परधान के विरुद्ध अनशन करने को तैयार करवाते हैं, जिससे उसके रूपमती बेटी को न्याय मिल सके। लीडरजी ने शनिचरी को परधान के खिलाफ खूब भड़काते हैं और कहते हैं- "शनिचरी परधान के खिलाफ नहीं, अन्याय, दगाबाजी और शोषण के खिलाफ लड़ रही है, अहिंसा की लड़ाई, महात्मा गाँधी का रास्ता है। आप सब का कर्त्तव्य है कि जोर-जुल्म के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में उस गरीब विधवा को सपोर्ट करें।"[20] इस प्रकार लीडरजी शनिचरी को परधान से संघर्ष करने के लिए कहते हैं क्योंकि आदर्श सामूहिक विवाह के द्वारा अन्य लड़कियों के साथ उसकी लड़की को भी बेच दिया है परन्तु इस संघर्ष की डोर लीडरजी के हाथ में है जो चुनाव के अवसर पर शनिचरी को न केवल परधान की इन हरकतों से परिचित है बल्कि अनशन के लिए उसे तैयार भी करता है। लीडर ने इस अनशन के माध्यम से शनिचरी का दो बीघा खेत भी अपने नाम करवाया है और उसे अनशन के लिए इतना उत्तेजित कर डाला है कि अंततः उसकी मौत हो जाती है जाहिर सी बात है, इस पूरी कथा में मरना तो शनिचरी को है ही, चाहे परधान के हाथों हो या लीडर के हाथों। जब शनिचरी की मृत्यु होती है तब लीडर की पत्नी कहती है कि- "तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है।"[21]

'अकालदण्ड' कहानी में एक स्त्री की समस्या को दिखाया गया है । यह बहुत ही चर्चित कहानियों में से एक है। कहानी की नायिका सुरजी के माध्यम से स्त्री को संघर्ष, विद्रोह करते दिखाया गया है। इस कहानी में सुरजी ने केवल संघर्ष ही नहीं करती बल्कि उसे विद्रोह करना भी आता है। सुरजी एकदम ठण्डे दिमाग से अपने अन्दर के क्रोध, आक्रोश को शांत करती है जिसका वर्णन शिवमूर्ति के शब्दों में ऐसे हैं - "अन्दर का दृश्य बड़ा भयानक है। सेकरेटरी बाबू पलंग पर नंग-धरंग पड़े छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हासिये से उसकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अँधेरे में गुम हो गई है।"[22] इस कहानी में लेखक ने 'पोएटिक जस्टिस' का जो चित्रण किया है वह अत्यंत मनोरम तो है ही, प्रतीकात्मक भी है। नारी ही वर्चस्व की सत्ता को समाप्त करने की कोशिस करती है और सफल भी नारी ही बनती है। उसमे गजब का आत्मविश्वास और दृढसंकल्प है।

'सिरी उपमा जोग' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसने दो शादियाँ की है। जब वह व्यक्ति कुछ नहीं था, तब उसकी ग्रामीण पत्नी ने उसका साथ दिया। उसका हौसला बढ़ाया, यहाँ तक की पूरे घर की जिम्मेदारी खुद उठाई और खेतीबाड़ी का काम संभाला, बस इसलिए कि उसका पति पढ़-लिखकर एक अफसर बन सके। जब वह दिन आ गया तो पति को वही पत्नी जाहिल और गवाँरु लगने लगी। उसने एक शहरी लड़की से शादी कर ली और दस साल से वह गाँव नहीं गया। उसकी पत्नी जानती है कि उसके पति ने दूसरी शादी कर ली है, पर अपने भाग्य को नहीं कोसती, उस नियति को स्वीकार कर लेती है।

शिवमूर्ति की एक बड़ी प्रासंगिक कथा 'भारतनाट्यम्' शीर्षक से है। इस कहानी में शिवमूर्ति एक ऐसे सिद्धांतवाहक युवक की कथा कहते हैं जो समझौते करते हुए, समाज की मुख्यधारा तक पहुँचते-पहुँचते अपना सबकुछ खो देता है । बेरोजगारी की दशा में माँ-बाप की उपेक्षा युवक की सम्वेदना को सुखा डालती है तो पुत्र पाने की व्याकुल चाहत उसकी पत्नी को कुल्टा बना देती है। इस कहानी का ज्ञान भयानक मानसिक यन्त्रणा का शिकार बनता है तो उसकी पत्नी पर भी मानसिक निर्यातन जारी रहता है। उसकी किसी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है। सबसे दुखद स्थिति ज्ञान की बेटियों की है, उन्हें जूठे ग्लास के फेन से तृप्त होना पड़ता है । यह इसलिए कि वे लड़कियां हैं । पारिवारिक विघटन के साथ-साथ जर्जर आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। साथ ही इस कहानी में कहानीकार ने शिक्षित बेरोजगार की मनःस्थितियों का भी चित्रण किया है। परिवार तथा

समाज में उसकी उपेक्षा होती है। उसके पिता तक उसमें हजारों कमियाँ निकालते रहते हैं। उनकी कटुक्ति होती है- "साला, चलता कैसे है, शोहदे की तरह ! चलता है तो चलता है, साथ में साडी देह क्यों ऐंठे डालता है? दाद्रिता के लक्षण हैं ये, घोर दरिद्रता के। मांगी भीख भी मिल जाये इस हरामखोर को तो इसकी पेशाब से मूंछ मुंडा दूंगा..... और देखता कैसे है? चनिचरहा ! इसकी पुतली पर शनीचर वास करता है। सोने पर नजर डालेगा तो मिटटी कर देगा। ससुर, जम्हाई ही लेता रहेगा या चारपाई भी छोड़ेगा? देख लेना, यह चारपाई भी दो महीने से ज्यादा नहीं चलेगी।"[23] साथ ही माँ भाभी तथा नातेदारों की उपेक्षा भरी दृष्टि सदा ही ज्ञान पर लगी रहती है | इस कहानी के माध्यम से शिवमूर्ति ने अपने समय के सच को उद्वेलित किया है | भ्रष्टचार की सर्वव्यापकता से परिचित किया है | पैत्रिक सतात्मक समाज व्यवस्था में पत्नी पुत्र की प्राप्ति हेतु अपने पति के भाई से संबंध रखती है | तीन पुत्रियों का पिता ज्ञान पूरी तरह से टुटा हुआ है उसे भारत सरकार की ठीक-ठाक नौकरी मिलती है पर अपने स्वभाविक आक्रोस और क्रोध को छिपा न पाकर अपने बॉस की नाक पर करकर घूंसा जमा देता है | सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टचार और अकारण भय-प्रदर्शन जारी है |

'तिरिया चरित्तर' हंस पत्रिका में छपी एक बहुत ही चर्चित कहानी है। इसका प्रमुख पात्र विमली के माध्यम से समाज में व्याप्त स्त्री की दशा को दर्शाया गया है। इस कहानी में विमली का सामना गणेशी, कुईसा, बिल्लर जैसे व्यक्तियों से होता है और विमली भी इनके इरादे को जानती है। कुइसा का कहना है कि- "विमली के आने से भट्ठे पर 'उजियार' हो जाता है और उसके जाते ही अंधियार।"[24] यह एक पुरुषवादी सोच को दर्शाता है। परन्तु विमली इन सब लोगों से तो अपनी आबरू को बचाने में सफल रहती है परन्तु उसे विदा कराकर लाया ससुर बिसराम चौधरी की एक रात सत्यनारायण भगवान के चरणामृत में अफीम मिला कर छल से उसका बलात्कार करता है। पंचायत बिसराम की जगह विमली को ही गाँव की इज्जत में दाग लगाने वाला करार देती है और उसके ललाट पर गरम कलछुल से दागा जाता है। पूरे गाँव की नजर में विमली तिरिया चरित्तर बन गई जिसको दण्डित करना पंचायत का अधिकार है, नहीं तो समाज में अराजकता पैदा हो जाएगी। आजकल के समय में पंचायतों का यह रूप हो गया है। इसका शिकार कभी विमली होती है तो कभी गाँव की कोई और लड़की। शिवमूर्ति अपनी कहानियों के माध्यम से ऐसे ही ग्रामीण समाज का चित्रण कर रहे हैं।

अपनों की, आत्मीयों की शिकार बनती नारी की यातना की व्यथा-कथा प्रस्तुत करने में शिवमूर्ति की तुलना किसी से नहीं की जा सकती।

'केशर-कस्तूरी' कहानी उनकी अन्य कहानियों से अलग प्रकार की है। पिता की अकर्मण्यता और बेटी की उदात्तता के बीच पसरी यह कहानी अत्यंत कारुणिक है। यह पूरी कहानी अभिधात्मक है, अपने कहन के ढंग से लेकर सम्प्रेषण के स्तर तक। केशर में नियति को स्वीकार कर प्रारंभ से लड़ने का जो जज्बा है, वह अत्यंत मार्मिक है। "मेरी सोच में अपनी देह न लगाइएगा। जितने दिन आपकी बारी-फुलवारी में खेलना-खाना बदा था, खेले-खाए। अब मेरा हिस्सा मुझे अलगिया मिल गया है। तो जैसे भी है, उसे भोगना होगा, खेना होगा। माँ-बाप जन्म के साथी होते हैं पापा ! 'करम-रेख' तो सभी की न्यारी है। जब जनक जैसे राजा जो राजा भी थे और 'बरह्म-ग्यानी' भी, जिनकी इतनी औकात थी कि सौ बेटी-दामाद को घर जमाई रखकर उम्र भर खिला सकतें थे- तीन लोक के मालिक से बेटी ब्याहकर भी उम्र भर उसे सुखी देखने को तरस गए तो हम गरीब लोगों की क्या औकात?"[25] यह केशर नहीं, केशर के रूप में हिन्दुस्तानी नारी का हजारों-हजार पीढ़ियों से बिरासत में मिला अनुभव बोल रहा था। यह बहुत बड़ी विड़म्बना है कि आज जब दुनिया विकास के किस मोड़ पर खड़ी है, वहाँ केशर जैसी लड़की उन्हीं संस्कारों में जी रही है। असल में यह संस्कार कम दासता के सूत्र ज्यादा हैं। "इसी कारण केशर जैसी लड़की इसे कर्म की बात मानकर आंसुओं से भरी जिंदगी जीती रहती है। आज के परिदृश्य में इन सब बातों का मूल्यांकन करना जरुरी है, नहीं तो इस विकास के मॉडल पर ही प्रश्न चिह्न खड़े होने लगते हैं।"[26]

सन् 2011 में इनकी एक और कहानी 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर' का प्रकाशन 'तद्भव' के अंक 24 (अक्टूबर 2011) में हुआ। इस कहानी में शिवमूर्ति ने मामा और मामी के दांपत्य जीवन के अनुपम चित्र अंकित किया है। इस कहानी में मामी अपने माता-पिता की अकेली संतान थी। मामा के लिए घर जमाई बनकर रहना संभव न था। परन्तु गौना हो चुका था। मामी के प्रेम, सूझ-बूझ और अदम्य साहस से अलग-अलग रहकर भी दांपत्य जीवन बना रहा। लेखक के शब्दों में- "मामी ने अपने दांपत्य जीवन को भी धैर्य और मुस्कान से संभाल लिया। माँ-बाप की सेवा भी जरुरी थी और पति का सान्निध्य तथा संतति वृद्धि भी, मामी न किसी जिम्मेदारी से भागना चाहती थी न किसी जरुरत से विचलित रहना चाहती थी। इसके लिए उन्होंने अलग राह खोजी। शाम को गाय-बैलों को चारा-पानी देकर, माँ-

बाप को खिला-पिला कर पहर रात बीते लाठी लेकर निकलती मामी। सांप, बिच्छु और सियार-भेड़ियों को धत्ता बताती आधी रात के पहले पहले जा पहुँचती मामा के माचे पर। पहर डेढ़ पहर का अभिसार और चौथे पहर मायके के लिए वापसी अँधेरी रात हो या चांदनी, जाड़े की ठिठुरन हो या बरसात के गरजते बरसते बादल। मामी के लिए पति का सेज हमेशा डेढ़ दो घंटे की ददूरी पर रही।"[27] यहाँ पर यह स्पष्ट करना बहुत ही जरुरी है कि कहानीकार का उद्देश्य अभिसारिका मामी का चित्रण नहीं है, न ही कहानी का चरमोत्कर्ष है। दरअसल यह तो कहानी की शुरुआत है। देखा गया है कि हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध-जीवन से जुड़ी सार्थक कहानियाँ कम ही हैं, उसी कहानी को 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर' पूरी करती है। शिवमूर्ति ने इस कहानी में भी भारतीय गाँव की असली तस्वीर को आकर्षक ढंग से पेश किया है। अंतर्वस्तु और शिल्प के धरातल पर कहानी पूरी तरह से खरी उतरी है।

नया ज्ञानोदय के फरवरी, 2013 वाले अंक में शिवमूर्ति की एक उम्दा कहानी प्रकाशित हुई- 'बनाना रिपब्लिक' शीर्षक से। "बाबा साहब आंबेडकर के प्रयास से हो अथवा हमारी संसद की 'सदिच्छा' से, बहुत सारी सीटें अब अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षित कर दी गई हैं। उद्देश्य यह कि सभी तबकों को समुचित मात्रा में प्रतिनिधित्व करने का मौका मिले। दलितों तथा हरिजनों के हाथों में भी नेतृत्व आए। यह सच है कि भारतीय जनतंत्र में दलितों का प्रतिनिधित्व बढ़ने लगा है। लेकिन इस सच की सच्चाई को यानी सच के पीछे यथार्थ की परतों को शिवमूर्ति जिस बारीकी से उघाड़ते है उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम होगी। पंचायती व्यवस्था में पंचायत के चुनावों में अपनाए जाने वाले तमाम हथकंडों, चालाकियों, छल-कपट आदि को अनुभूति, संवेदना और विचारों में तालमेल के आधार पर 'बनाना रिपब्लिक' के कथा-सूत्रों को संजोया गया है।"[28] शिवमूर्ति ने समग्र भारत में चुनाव के दौरान अपनाये जाने वाली तरकीबों का यथार्थ चित्रण किया है। जो क्षेत्र सामान्य वर्ग के लिए था, उसे दलितों को आरक्षित कर दिया जाता है। ठाकुर साहब जग्गू यानी जगत नारायण को अपना मोहरा बना कर चुनावी दंगल में उतरना चाहते हैं। शुरू-शुरू में जग्गू झिझकता है। लेकिन ठाकुर उसे जो पट्टी पढ़ाता है, वह अचूक रहता है। "सालाना पंद्रह-बीस लाख तक खर्च करने का चांस रहता है। मनरेगा की मद से तो चाहे जितना निकालो बस कागज का पेटा पूरा करते रहो। निचे से ऊपर तक सबका मुंह बंद करने के बाद भी रुपयों में चार आना कहीं गया नहीं। पांच साल में पच्चीस लाख की बचत।"[29] सत्ता का नशा बड़ा विचित्र होता है। यह यूँ नहीं छूटता। मोहरा बना कर

जिस जग्गू को रखना चाहते थे ठाकुर साहब, उसी जग्गू में चेतना साकार होती है। वह ठाकुर साहब के षड़यंत्र कि जग्गू के पिता की जमीन को गिरवी रखें, अपने नाम कर लें, कौन निष्फल बनाता है। विजय का प्रमाणपत्र जाते ही जुलूस दलित बस्तियों की ओर जाती है। पाशा बदल जाता है। दलित चेतना की विजय होती है। जग्गू प्रधानी का चुनाव ही नहीं जीतता बल्कि सत्ता के प्रभाव में आकर वह भी अपने अस्तित्त्व को भुला देना चाहता है। जग्गू को कायदे का सरनेम मिल जाये, इसमें कोई बुराई नहीं। अपना नाम बदलकर 'टाइगर' बनकर 'ठाकुर-बैभव' की तरह अपने और दूसरे लोगों का शोषण करे, दमन करे, उनपर अत्याचार करे तो यह कैसी दलित चेतना? शिवमूर्ति ने बिना कुछ कहे इस ओर संकेत किया है। सत्ता का स्वाद अभी चखा भी नहीं लेकिन उसके नशे से मदहोश होने लगा है।

शिवमूर्ति की कोई भी कहानी का प्रकाशन होना हिंदी साहित्य-जगत के लिए एक आकर्षक घटना होती है। तीन साल के बाद उनकी एक कहानी 'कुच्ची का कानून' प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'तद्भव' के 32 वें अंक अक्टूबर 2015 में छपी है। शिवमूर्ति की कहानियों में हमेशा ही स्त्री के संघर्ष रहा है और बाकी सब कुछ गौण। चाहे वह 'तिरिया चरित्तर' की विमली हो, 'आकालदण्ड' की सुरजी हो या 'कसाईबाड़ा' की शनिचरी हो, हर जगह नारी-अस्मिता की लड़ाई है, वह भी अति साधारण एवं गरीब तथा लाचार स्त्री पात्रों के माध्यम से। इस लड़ाई में प्रायः स्त्री हारती हुई दिखाई देती है परन्तु 'कुच्ची का कानून' स्त्री संघर्ष की एक नई मशाल है। यह शिवमूर्ति की 20वीं सदी की नहीं, 21वीं सदी की कहानी है। इस कहानी में पंचायत उनकी 'तिरिया चरित्तर' की पंचायत से एकदम भिन्न है। 'कुच्ची का कानून' वाली पंचायत में स्त्री हारती नहीं, वह गाँव के गुण्ड़ों को अपनी तर्कशीलता से उन्हीं की मांद में निस्तारित कर देती है और एक विजेता के रूप में उभरती है। यहाँ संघर्ष की नियति निराशाजनक नहीं है। इस कहानी की स्त्री अपने संघर्ष में अकेली भी नहीं है, उसके साथ वह नया चेतन समाज है, जिसे आज सिविल सोसाइटी कहा जाता है। "शिवमूर्ति ने इस कहानी में पंचायत को एक तरफ के शास्त्रार्थ की वेदी की भांति प्रस्तुत किया है। यहाँ शास्त्रार्थ का विषय किसी निगूढ़ आध्यात्मिक दर्शन अथवा धार्मिक विचार के निष्पादन से जुड़ा नहीं है। यहाँ विचारणीय विषय एक विधवा स्त्री के कोख के अधिकार से जुड़ा है। माँ बनने के उस विधवा के संकल्प से जुड़ा है। वह धर्म-शास्त्रों की ज्ञाता नहीं है, किन्तु उसका व्यवहारिक ज्ञान प्रबल है। उसकी साधारण बुद्धि में आसाधारण तर्कशीलता समाहित है।"[30] कुच्ची भय, प्रतारणा और यौनिक शोषण का अपमान झेलने वाली एक अबला विधवा का जीवन

नहीं जीना चाहती और वह सफल भी होती है। इस दृष्टि से देखें तो यह कहानी मानव मुक्ति का आख्यान है। निश्चित ही शिवमूर्ति हमारे समय के मानव मुक्ति के एक बड़े आख्याता हैं और उनकी यह नई कहानी 'कुच्ची का कानून' साहित्य के मानव मुक्ति प्रवर्तन में महत उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में मील का एक नया पत्थर है।

शिवमूर्ति का 'तर्पण' उपन्यास दलित-विमर्श का महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'तर्पण' हजारों वर्षों से चली आ रही जातिगत शोषण की प्रवृत्तियों का खुलासा करता है। साथ ही शोषण के खिलाफ मुखर हो रहे दलित समाज के संघर्षों को व्यक्त करता है। यह संघर्ष दलितों के आत्मसम्मान का प्रतीक है, जिसे वे हर हाल में प्राप्त कर लेना चाहते हैं। 'तर्पण' सत्य की लड़ाई न होकर न्याय हासिल करने की लड़ाई है। अब दलित स्पष्ट रूप से सवर्णों के हजारों वर्षों के शोषण का प्रतिकार करने के लिए प्रतिबद्ध है। 'तर्पण' हिन्दू समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था की सड़ी-गली मान्यताओं को परत-दर-परत उघाड़ देता है। इस उपन्यास में 'बड़गाँव' एक ऐसा गाँव है जहाँ ठाकुरों-बाभनों के सैकड़ों सालों से चले आ रहे शोषण को दर्शाया गया है। बड़ी जातियाँ दलित स्त्रियों के यौन शोषण को हथियार के रूप में इस्तेमाल करती है। बड़ी जातियों के लिए दलितों का कोई सम्मान नहीं है- "बड़ी जातियों के लोग उनकी इज्जत पर हाथ डालने में रत्ती भर भी संकोच नहीं करते।"[31] धरमू पंडित का बेटा चन्दर भी इसी मनोवृत्ति का परिचय देता है। वह पियारे की बेटी रजपंती से बलात्कार की कोशिश करता है। लेकिन रजपंती और दूसरी स्त्रियों के विरोध के कारण वह सफल नहीं हो पाता। पियारे को जैसे ही यह खबर मिलती है, वह दोहरे दुःख और पीड़ा से सन्न रह जाता है- "जैसे पूरे शरीर का खून सूख गया हो। उसे तुरंत अपनी बड़ी बेटी सुरसती की याद आती है। दस साल हो गए उसे कुँए में कूद कर जान दिए हुए। आज तक पता नहीं चल पाया कि किसने उसका सत्यानाश किया था।"[32] सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियों के यौन शोषण की घटनाएँ बडगांव में पहले भी होती रही हैं।

भारतीय ग्रामीण समाज में पुलिस, उच्च जातियाँ आदि सभी मिलकर दलितों का शोषण करते हैं। सामाजिक स्तर पर जहाँ जाति के कारण अलग-अलग तरीके से शोषण होता है वहीं आर्थिक स्तर पर खेत में मजदूरी करने के बाद कम मजदूरी देते हैं। दलित इन शोषणकामी तत्वों के खिलाफ प्रतिकार कर देते हैं। भाईजी दलितों के नेता बनकर उभरते हैं, वह आर्थिक एवं सामाजिक दोनों मुद्दों पर दलितों को एकजुट करते हैं और इनको अलग-अलग चिह्नित करते हैं- "वह वर्ग-संघर्ष था। रोटी के

लिए। यह वर्ण-संघर्ष है इज्जत के लिए। इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरुरी है।"[33] दलित एक होकर पियारे और भाईजी के साथ देते हैं और वे उन उच्च जातियों के खिलाफ हो जाते हैं। इसी बीच बहुत सारी घटनाएँ घट जाती है। शिवमूर्ति अपने उपन्यास 'तर्पण' में जाति-व्यवस्था के यथार्थ को बहुत बारीकी और मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यक्त करते हैं। सवर्णों में भी ब्राह्मणों और ठाकुरों में आपसी सामंजस्य नहीं है। वे भी मौका पाने पर एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। लेकिन दलित का सवाल आने पर एकजुट हो जाते हैं। हजारों सालों से चली आ रही मनुवादी मानसिकता मानों उनको एकजुट करने में प्रेरक की भूमिका निभाती है। यह उपन्यास उस क्रूर जाति-व्यवस्था की कलाई खोलता है जिसके मानने वाले इसे सनातन ब्रह्म से जोड़कर देखते हैं। शिवमूर्ति इस उपन्यास के पात्रों के द्वारा मनोवृत्तियों, मनुष्य की स्वाभाविक स्थितियों की ओर संकेत करते हैं।

शिवमूर्ति का पहला उपन्यास 'त्रिशूल' 1993 के हंस के दो अंकों में प्रकशित हुआ था और सन् 1995 में उसे राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ने छापा था। यह ऐसा उपन्यास है जो उनकी कहानियों की लीक से हटकर एक नए दृष्टिकोण और तेवर के साथ सामने आता है। साम्प्रदायिकता और जातिवाद को एक एक साथ इस उपन्यास में रखा गया है। इन दोनों के पीछे राजनीति है। त्रिशूल न केवल मंदिर-मंडल की बल्कि आज के समय में व्याप्त उथल-पुथल और टूटन की कहानी है। देशव्यापी उथल-पुथल को कथ्य बनाकर लेखक जातिवाद के विरूप और साम्प्रदायिकता की साजिश को बेबाकी और निर्ममता से बेनकाब करता है। 'त्रिशूल' महमूद को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। शास्त्री जी महमूद को 'चेला', 'चेलवा' और काम निकालने के लिए 'बेटा' भी कहते हैं। शास्त्री जी और नैरेटर में अंतर है। दोनों दो छोरों पर हैं। नैरेटर के यहाँ तर्क है और शास्त्री जी के यहाँ आस्था। शास्त्री जी का चरित्र बहुत अच्छे से उभर कर सामने आया है। शास्त्री जी एक ऐसे आदमी हैं जो कि आदमी की रहन सहन से ही उसकी धार्मिक निष्ठा का अंदाजा लगा लेते हैं- "क्यों नहीं साहब ! गाय पाल कर आप सच्चे हिन्दू होने का धर्म निबाह रहे हैं। गो-ब्राह्मण की सेवा ! आपको देखकर ही लगता है कि आप आस्थावान व्यक्ति हैं और जीवन का मूल है आस्था।"[34] यानी शास्त्री जी जैसे लोग जो मूलतः संघ की विचारधारा का प्रचार-प्रसार कर रहे है, वह धीरे-धीरे अपना मंतव्य स्पष्ट करते हैं। उन्हें यह नहीं पता है कि जो साहब कॉलोनी में रहने आए हैं उनकी धार्मिक मान्यता क्या है पर गाय देख कर ही वे उनकी धार्मिक निष्ठा की सहज कल्पना कर लेते हैं। उनके लिए धर्म का एक खास मतलब है, राम

मंदिर-आन्दोलन के समय उनकी यह धार्मिक प्रतिबद्धता और अधिक बढ़ जाती है। धर्म को लेकर जिस तरह की बातें शास्त्री जी करते हैं वह मूलतः धार्मिक बातें कम लगती है, उसमे आरोप ज्यादा है। इसमें अतीत की सारी गलतियों का जिम्मा सिर्फ मुसलमानों के ऊपर है। जिन तथ्यों का वे इस्तेमाल करते हैं वह पूरी तरह से सांप्रदायिक हैं।

धर्म को राजनीति का हथियार बनाने वाले राजनेताओं एवं धर्मान्धों के षड्यंत्रों को बेनकाब किया गया है। सच है कि 'त्रिशूल' राममंदिर-बाबरी मस्जिद विवाद को आधार बनाकर रचा गया है। परन्तु यह उपन्यास आज भी अपनी सार्थकता प्रतिपादित करने में समर्थ है। आज भी जाति और धर्म के नाम पर धर्मोन्मादी नेता अलगाव को बढ़ावा दे रहे हैं। घृणा की भावना को फैलाया जा रहा है। एक-दूसरे के विरुद्ध भड़का कर उनमें नफरत की आग फ़ैलाने का काम कहीं शस्त्री जी करते हैं तो कहीं मौलवी। धर्म के ऐसे ध्वजधारी न केवल देशद्रोही हैं, बल्कि मानवद्रोही भी हैं। "त्रिशूल के शास्त्री जी हिन्दू हैं, गाय पालते हैं। इसी से हिंदुत्व की रक्षा करते हैं। महमूद मुसलमान है। यह उसका अपराध है। शास्त्री जी उससे सारा काम लेते हैं। उसकी तारीफ भी करते हैं, तब कुछ भी अपवित्र नहीं होता था। लेकिन, जैसे ही शास्त्री जी का हिंदुत्व भाव जगता है, तब सब कुछ अपवित्र और अशुद्ध हो जाता है। यहाँ तक कि महमूद को बेवजह गलत और झूठे केस में फंसा कर पुलिस से बुरी तरह पिटवाते हैं। शास्त्री जी के यह सोच कितनी गन्दी है कि मुस्लिम हर हाल में अपराधी, आतंकवादी और विधर्मी होते हैं और हिन्दू पाले जैसे लोक-गायक की हत्या करने के बावजूद संत और महात्मा होते हैं।"[35] इससे उनके हिंदूवादी होने के प्रमाण मिले न मिले, फासीवादी बनने से सबूत जरुर मिल जाता है। त्रिशूल की खूबी यह है कि इसमें हिन्दू साम्प्रदायिकता के साथ-साथ मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भी आड़े हाथ लिया गया है। साम्प्रदायिकता के जहरीले वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया गया है – "अयोध्या में घटी घटना की प्रतिक्रिया में बांग्लादेश और पाकिस्तान में मंदिरों को तोड़े जाने, हिन्दुओं की दुकाने और घर लूटने, जलाने, बच्चों को आग में फेंकने, औरतों से बलात्कार करने की ख़बरें आ रही हैं। इनको अफवाहों की चाशनी में मिलाने के बाद जो तस्वीर उभर रही है उससे आशंका, अविश्वास और दहसत का माहौल गाढ़ा हो रहा है।"[36] त्रिशूल का प्रारंभ और अंत महमूद से सम्बंधित है। समाज के यथार्थ को गहरे रूप में चित्रित करने वाले कथाकार शिवमूर्ति ने प्रारंभ, मध्य और अंत को एक सूत्र में पिरोया है। समय के संकट और टूटन को बड़े प्रभावशाली ढंग से पेश किया है। जाति, धर्म और

राजनीति के आधार पर समाज, राष्ट्र और संस्कृति को बाँटने वालो के हाथ में त्रिशूल है। महमूद की छाती पर त्रिशूल अड़ाने का आशय है अपने विश्वास तथा साझी संस्कृति को लहूलुहान करना। तभी तो उपन्यास के अंत में महमूद के चले जाने पर शिवमूर्ति लिखते हैं- "लगता है महमूद के साथ ही हमारी युगों-युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्वबन्धुत्व की पूंजी आज इस घर को हमेशा-हमेशा के लिए अलविदा कहके जा रही है।"[37]

उनका एक और उपन्यास 'आखरी छलांग' किसानों की समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास का नायक पहलवान एक सीमांत किसान है। इसकी पृष्ठभूमि अवध का ग्रामांचल है। पहलवान आज का किसान है। नाम तो पहलवान नहीं है, कुछ और है, मगर यह व्यंजना मूलक विशेषण ही अब संज्ञा बन गया है (पहलवान यानी जो लड़ने वाला हो, योद्धा)। इस उपन्यास में भारतीय किसान की ज्वलंत समस्या को केंद्र में ले आए हैं। एक समस्या हो तो कोई निपट भी ले, मगर यहाँ तो समस्याओं का पहाड़ हैं। बीज, पानी, खाद, कर्ज, दहेज़ आदि की समस्या। कुछ समस्याएँ निजी हैं तो कुछ समस्याएँ पूरे किसान समुदाय की हैं। परन्तु यह निजी और सार्वजानिक समस्याएँ एक-दूसरे से अलग न होकर एक-दूसरे में समायी हुई हैं। बेटे की फीस और बेटी का दहेज़ पहलवान की निजी समस्याएँ होते हुए भी निजी नहीं है। बीज, खाद, पानी, बिजली, लागत मूल्य का न मिलना, कर्ज आदि की समस्या समस्त किसानों की समस्याएँ हैं। किसान जीवन परस्पर उलझी हुई समस्याओं का जाल है। किसान की एक समस्या, एकाध समस्या होती या समस्याएँ एक-एक करके आती तो वह उससे निपट लेता पर उसके ऊपर एक साथ समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ता हैं। पहलवान खर्चों का हिसाब लगाने लगते हैं, ट्यूबवेल का बिल सवा चार सौ रुपए। इंजीनियरिंग पढ़ रहे बेटे का मासिक खर्च डेढ़ हजार रुपए। खाद के लिए दो हजार रुपए। बैल का खुड़ ठीक न हुआ तो ट्रेक्टर से खेत जुताई के लिए हजार-बारह सौ रुपयें। बड़ी बेटी की ब्याह के लिए वे पहले ही खेत रेहन रख चुके हैं। आमदनी का कोई जरिया नहीं होता किसान के पास। यह उपन्यास आज की शिक्षा व्यवस्था पर भी नजर डालता है। अब आज की दुनिया में शिक्षा एक व्यवसाय बन चुकी है। पहले जो बच्चे पढने में अच्छे होते थे, उनके लिए उच्च शिक्षा पाना कठिन न था और जो बच्चे पढने में कमजोर होते और रुपयों के बल पर शिक्षा प्राप्त करते तो उन्हें अच्छे निगाह से नहीं देखा जाता था, परन्तु आज स्थिति बदल गई है। पहलवान को जब भी बेटे की पढाई के खर्चे की बात याद आती है, वे बहुत सोच

में पड़ जाते हैं। पहलवान एक गरीब किसान है जिसे बहुत सी बैटन पर सोचना पड़ता है, खेती से लेकर परिवार तथा कर्ज तक। 'आखरी छलांग' में गाँव के लोगों की व्यवहार-कुशलता, नौकरी के लिए सम्मान, एक-दूसरे के प्रति समयानुसार स्नेह-इर्ष्या सब है । यहाँ गाँव अपनी जीवंतता और वास्तविकता में मौजूद है। शिवमूर्ति बाहर और भीतर भी देखते हैं, जिससे उनकी रचनाएँ विश्वसनीय बनती हैं। वे सरसों और धान के किस्सों में ही नहीं, जाति के भीतर की श्रेणियों से भी परिचित हैं।

शिवमूर्ति के जीवन से सम्बन्धित पुस्तक का नाम है 'सृजन का रसायन' जिसे राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ने छापा है सन् 2014 में। 'सृजन का रसायन' रचना प्रक्रिया के तमाम आदिम तत्वों को उकेरती यह पुस्तक कथाकार के जन्म और बनने की यात्रा का एक लेखा-जोखा भर नहीं है, बल्कि वास्तविकताओं के कड़वे और विद्रूप यथार्थ के भीतर संघर्षरत मानवीय जिजीविषा के कलात्मक रूपांतरण का एक मार्मिक और जीवंत दस्तावेज है। शिवमूर्ति अपने जीवन की घटनाओं और ग्रामीण यथार्थ के पर्यवेक्षण को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाते हैं । उनके पात्र कोई काल्पनिक पात्र नहीं हैं बल्कि वे अपने वजूद के साथ, अपनी मान्यताओं के साथ, वास्तविक पात्र हैं जो अन्याय के खिलाफ हिंसात्मक तरीके से विद्रोह करते हैं। उनकी कहानियों में अन्याय और शोषण के विविध रूपों का महज चित्रण और वर्णन ही नहीं है, बल्कि उसका उपाय, प्रतिकार और सक्रिय विरोध भी उपलब्ध है। सबसे महत्पूर्ण बात यह है कि वे समाज में वर्णभेद को रेखांकित करते हैं। वे जीवन-विवेक की दृष्टि अनुभवों से प्राप्त करते हैं। 'सृजन का रसायन' असल में शिवमूर्ति की एक छोटी-सी आत्मकथा है। पिछले जीवन की पूरी पटकथा है या यों कहें कि एक डाक्यूमेंट्री है। जिंदगी जीने की कठिनाइयों और अजबों से बरी, किसी सैद्धांतिकी से दूर, आनंद, हौसले और उत्सुकता से दुनिया को समझने की कोशिश करती। यह दर्शन की तरह रचना प्रक्रिया को व्याख्यायित नहीं करती, यह निबंध भी नहीं है न ही अकादेमिक या लेखकीय सिंहासन् से रचना-प्रक्रिया का कोई विश्लेषणात्मक उपक्रम। यही चीज इसे अलग बनती है और अपने आप में औपन्यासिक कलेवर भी प्रदान कर देती है। अतः शायद इसे हम आत्मकथा के करीब कहीं रख सकते हैं। लेकिन पूरी तरह आत्मकथा नहीं, 'सृजन का रसायन' में उनकी कहानियों को समझने के सूत्र को भी खोजे जा सकते हैं। तो यह अपने आप में एक स्वतंत्र रचना है। इस पुस्तक के अनेक आयाम हैं, निसंदेह पूरी पुस्तक पठनीय है। सृजन तत्वों और आज के समय के सरोकारों से सीधे सम्बंधित यह पुस्तक हमारे कथा-साहित्य को विस्तृत बनाती है।

'मेरे साक्षात्कार' नाम से सन् 2013 में शिवमूर्ति की एक और पुस्तक किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में शिवमूर्ति से अनेक व्यक्तियों ने जो बातचीत की हैं, उसी बातचीत को दिया गया है। ये साक्षात्कार शिवमूर्ति के साहित्य को समझने के सूत्र प्रदान करते हैं। स्त्री विमर्श के प्रचालन में आने से बहुत पहले रचा गया शिवमूर्ति का साहित्य स्त्रियों को केन्द्रीयता प्रदान करते हुए उनके संघर्षों को व्यक्त करता है। 'तिरिया चरित्तर' जैसी कालजयी कहानी इस तथ्य का प्रमाण है। साथ ही शिवमूर्ति को गांवों पर लिखने वाले कथाकारों में अग्रणी माना जाता है। गाँव और किसान के साथ उनका अनिवार्य रिश्ता अनेक उत्तरों में यहाँ व्याख्यायित हुआ है। वस्तुतः इस समय को समझने में ये साक्षात्कार हमारी सहायता करते हैं।

संदर्भ :

1. मानक हिंदी कोश (पांचवा खंड), रामचंद्र वर्मा, पृ. सं. 278
2. समकालीन हिंदी कहानी की भूमिका, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. सं. 2
3. समकालीन हिंदी कविता, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. सं. 19
4. समकालीन सिद्धांत और साहित्य, डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ. सं.16
5. समकालीन प्रतिनिधि कवि, अनंत कीर्ति तिवारी, पृ. सं. 2
6. समकालीन हिंदी कहानी बदलते जीवन सन्दर्भ, शैलजा, पृ. सं. 62
7. वही, पृ. सं. 63
8. जिनमें मकान दहते हैं, सुदर्शन चोपड़ा, पृ. सं. 23
9. सारिका, दिनेश पालीवाल, 16 अप्रैल 1983, पृ. सं. 78
10. एक अमृर्त तकलीफ, रमेश बक्षी, पृ. सं. 34
11. रिश्ते, से. रा. यात्री, पृ. सं. 33
12. यही सच है, मन्नू भंडारी, पृ. सं.144-145
13. सारिका,सं. संजीव, जनवरी 1980 पृ. सं. 65
14. माहेश्वर की प्रतिनिधि कहानियां, माहेश्वर, पृ. सं. 48
15. समकालीन हिंदी कहानी बदलते जीवन सन्दर्भ, शैलजा, पृ. सं. 111-112
16. वही, पृ. सं.124

17. कई सूरतों के बीच : कथाहीन, इब्राहीम शरीफ, पृ. सं. 38

18. सारिका, सं. हिमांशु जोशी, फरवरी, 1975, पृ. सं. 95

19. इंडिया इनसाइड, सं.अरुण सिंह, साहित्य वार्षिक 2016, पृ. सं. 111

20. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 7

21. वही, पृ. सं. 23

22. वही, पृ. सं. 51

23. वही, पृ. सं. 60

24. वही, पृ. सं.82

25. वही, पृ. सं.139

26. लमही, सं. विजय राय, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ. सं. 114

27. तद्भव, अंक-24, पृ. सं. 59

28. संवेद- 73-75, सं. किशन कालजयी, फरवरी-अप्रैल 2014, पृ. सं. 17

29. नया ज्ञानोदय, सं. रवीन्द्र कालिया, अंक-120, फरवरी 2013, पृ. सं. 71

30. इंडिया इनसाइड, सं. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिक 2016, पृ.सं. 25

31. तर्पण, शिवमूर्ति, पृ. सं. 16

32. वही, पृ. सं. 12

33. वही, पृ. सं. 20

34. त्रिशूल, शिवमूर्ति, पृ. सं. 7

35. इंडिया इनसाइड, सं. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिक 2016, पृ. सं. 64

36. वही, पृ. सं. 64

37. त्रिशूल, शिवमूर्ति, पृ. सं. 104

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिन्दी कहानी एवं समाज

2. क. समकालीन समाज का स्वरुप

समाज के तात्विक स्वरुप का अध्ययन और विश्लेषण समाज शास्त्र करता है। लेकिन समाज एक ऐसा सर्वव्यापी तत्व है जो किसी न किसी रूप में ज्ञान की हर शाखा से जुड़ा होता है और हर शाखा को अपने सन्दर्भ में विचार करना होता है। अत: साहित्य का भी समाज के स्वरुप और उसकी विकास यात्रा को, अपने अध्ययन और अभिव्यक्ति को पूर्णता की और ले जाने के लिए अपने अध्ययन का विषय बनाना होता है। समाज के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टिपात करते हुए यदि हम सुदूर अतीत में उसके जन्म काल पर पहुँचने का प्रयत्न करे तो समाज का अस्तित्व मनुष्य जीवन के अस्तित्व के साथ ही खड़ा हुआ होगा। जब मनुष्य ने दूसरी किसी भी मानव इकाई को साथ लेकर जीवन के कदम बढ़ाये होंगे उसी समय उसकी सामाजिकता का बीज अंकुरित होकर समाज की परिकल्पना के स्वप्न देखने लगा होगा। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों मानव जीवन में सदस्य के रूप में संख्यावृद्धि के साथ-साथ सम्बन्धों के स्वरूपों का बहुआयामी विकास शुरु हुआ होगा जो मूर्तरूप में रुपायित होकर समाज के रूप में हमारे सामने आया है। समाज शब्द 'अज' धातु में 'सम' उपसर्ग लगने से निष्पन्न हुआ है। 'अज' धातु का अर्थ होता है- सदैव क्रिया शील होना या गति शील होना। 'सम' उपसर्ग का अर्थ होता है-समान रूप से सम्मिलित होना। अतः समाज शब्द का पूर्ण अर्थ हुआ समान रूप से सदैव क्रिया शील होना।

समाज शब्द का प्रयोग बहुत सारे अर्थो में हुआ है तथा अनेक धारणाएँ भी समाज के सन्दर्भ में प्रचलित रही है। सामान्यत: इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह अथवा झुण्ड के रूप में किया जाता है। व्यक्तियों के समूह रूप में एकत्र होने से समाज नहीं बनता, इसके लिए आपसी सहयोग और व्यवस्था की अपेक्षा भी होती है। समाज का अर्थ वह सामाजिक सम्बन्ध है जो एक दूसरे को प्रभावित करे। पहले ही कहा जा चुका है कि समाज एक से अधिक लोगों के समुदाय को कहते हैं। समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति मानवीय क्रिया करते हैं। मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, निर्वाह तथा सामाजिक सुरक्षा की क्रियाएँ सम्मिलित होती है। समाज ऐसे लोगों का समूह है जो अपने समूह के

अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेलजोल रखता है। किसी भी समाज के अंतगर्त आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

समाज मानवीय अंत: क्रियाओं की एक प्रणाली है। मानवीय क्रियाएँ हमेशा होती रहती हैं चाहे वह चेतन अवस्था में हो या अचेतन में। व्यक्ति कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयास की अभिव्यक्ति है। मानव की कुछ नैसर्गिक तथा अजिर्त आवश्यकताएँ होती हैं। जिसकी पूर्ति के अभाव में व्यक्ति में कुंठा और मानसिक तनाव व्याप्त हो जाता है। वह इनकी पूर्ति स्वयं नहीं कर पाते तो उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने दीर्घ विकासक्रम में मनुष्य ने एक समिष्टगत व्यवस्था को विकसित किया है। इस व्यवस्था को ही समाज के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह व्यक्तियों का एक ऐसा समुह है जहाँ वे निश्चित संबंध और विशिष्ट व्यवहार के माध्यम से एक दूसरे से बंधे होते हैं। क्योंकि समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है इसलिए इसका कोई मूलत: स्वरुप नहीं होता, इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है।

सामाजिक संगठन का रूप कभी भी शाश्वत नहीं रहता। समाज व्यक्तियों का समुच्चय है और भिन्न-भिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूहों में विभक्त हैं। अत: मानव मन और समूह मन की गतिशीलता उसे हमेशा प्रभावित करती ही रहती है तो परिणामस्वरूप समाज परिवर्तनशील होता है। यह गतिशीलता ही समाज के विकास का मूल तत्व है। जिसकी संक्रमण की निरंतरता में सदस्यों का उपक्रम, उनकी सहमति और नूतनता से अनुकूल की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है। समाज की अवधारणा मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति पर आधारित है। यही उसे संबंधों की और अग्रसर करती है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक सम्पूर्ण जीवन समाज में ही व्यतीत करता है। समाज से जुड़ी परम्पराओं एवं मान्यताओं का पालन भी करता है एवं कभी-कभी रूढ़ियों एवं जड़ता के प्रति विद्रोह भी करता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं हेतु दूसरे मनुष्यों पर निर्भर रहता है। मनुष्य के विकास के लिए आपसी संबंधों में एकरूपता होना अनिवार्य है। सामाजिक पर्यावरण और अन्त: क्रिया के अन्तर्गत सामाजिक संबंधों का विश्लेषण किया है, वे एक दूसरे से पृथक होते हुए भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं है।

समाजशास्त्रीय तथा वैज्ञानिक प्रयोग से समाज का अर्थ व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह से न होकर व्यक्ति के परस्पर संबंधों से होता है । कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की समाज संबंधी परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं:-

1. मैकाइवर तथा पेज के अनुसार –

"समाज व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं के अधिकार एवं पारस्परिक संयोग के अनेक समूहों एवं भागों के मानव व्यवहार के नियन्त्रणों एवं स्वाधीनताओं की व्यवस्था है।"[1]

2. आगबर्न और निमकाफ के अनुसार –

"जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति एकत्रित होकर एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, तब वे एक समूह का निर्माण करते हैं ।"[2]

3. आर.एम. विलियम्स के अनुसार –

"एक सामाजिक समूह मनुष्यों के उस निश्चित संग्रह को कहा जाता है, जो पारस्परिक अन्तक्रियाएँ करते हैं और उस अन्तक्रिया को इकाई रूप में ही दूसरों के द्वारा मान्य होते हैं।"[3]

4. सैणडरसन' के अनुसार –

"समूह दो या दो से अधिक उन व्यक्तियों का संग्रह है, जिनके बीच मनोवैज्ञानिक अन्तक्रियाओं के निश्चित प्रतिमान पाये जाते हैं। यह अपने सदस्यों और अन्य व्यक्तियों के द्वारा एक सत्ता के रूप में मान्य होता है क्योंकि यह सामूहिक व्यवहार का ही एक ही विशेष स्वरुप है।"[4]

5. मिशेल के अनुसार –

"समूह का अर्थ व्यक्तियों की किसी भी उस छोटी अथवा बड़ी संस्था से है, जिनके बीच इस प्रकार के संबंध विद्यमान हों कि उन्हें एक संबध इकाई के रूप में देखा जाने लगे।"[5]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मनुष्य सामाजिक संबंधों पर आधारित है अत: यह कहा गया है कि "मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों का जाल सा बिछा रहता है। मानव संबंध के इस ताने-बाने, इस तारतम्य, इस सिलसिले को ही समाज की संज्ञा दी जाती है।"[6] सामाजिक संबंधो में परिवर्तन होते

ही समाज में भी समानान्तर परिवर्तन होता है। परिवर्तन समाज का नियम है समाज दो प्रकार के होते हैं - गतिहीन व गतिशील। गतिहीन समाज में परिवर्तन होता है परन्तु वह गतिशील से मंद व सूक्ष्म होता है। समाज के प्रमुख घटक माने जाते हैं- व्यक्ति, समुदाय, परिवार, सामाजिक रिश्ते, नाते आदि। जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन सब से जुड़ा हुआ है। समाज का आरम्भिक रूप जितना सरल है विकास उतना ही जटिल। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि विषय समाज के अन्तर्गत ही आते हैं इन सब में यदि थोड़ा भी परिवर्तन होता है तो समाज उससे प्रभावित होता है। इन परिभाषाओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि समाज रीतियों और कार्य प्रणालियों, श्रेणियों तथा विभिन्न समूहों तथा मानव व्यवहार के नियंत्रणों आदि की व्यवस्था हैं।

समकालीन भारत में सामाजिक क्रमविकास के अनेक अलग-अलग स्तर साथ-साथ मौजूद है। आदिकालीन शिकारी तथा भोजन संग्राहक, हम खेती करने वाले किसान जो आज भी कुदाली या आघ हल का इस्तेमाल करते हैं, विभिन्न प्रकार के घुमंतू, एक ही जगह बसे किसान जो खेती के लिए हल का इस्तेमाल करते हैं, दस्तकार और प्राचीन वंश परंपरा वाले भूस्वामी तथा अभिजात वर्ग। दुनिया के अधिकतर प्रमुख धर्म-हिन्दू, इस्लाम, ईसाई और बौद्ध, यहाँ हैं और इनके साथ आस्था और कर्मकांड की दृष्टि से इतने अलग-अलग ढंग के संप्रदाय और पंथ भी यहाँ है जो विस्मय में डाल देते हैं। इन सबके साथ आधुनिक अकादमिक, अफसरशाही, औद्योगिक और वैज्ञानिक अभिजन को भी जोड़ देने से हम देखते हैं कि यहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ रह रहे हैं। अपने विकास की प्रक्रिया में भारतीय समाज ने एक मिली - जुली संस्कृति विकसित की है जिसकी विशेषता है बहुलवाद के कुछ स्थायी स्वरूप। समकालीन समाज को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- रूढ़ीवादी समाज और प्रगतिवादी समाज। रूढ़ीवादी समाज ठहरे हुए पानी की तरह हो चुकी है। यह बात यकीन के साथ कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी समाज विकास की तरफ तेजी के साथ बढ़ रहा है। परन्तु समकालीन समाज भी रूढ़ीवादी, असामाजिक बुराइयों की चपेट में है। पूरे देश में भ्रष्टचार फैला हुआ है। अत्याचार, बलात्कार, जातिवाद, आतंकवाद आदि मानवता विरोधी बुराइयाँ अधिक फैल रही हैं जिसे नहीं रोका जा रहा है। समकालीन समाज का दूसरा नाम विज्ञान का युग भी है, दूरसंचार और वैश्वीकरण का युग है। आज के इस युग में दुनिया छोटी लगने लगी है पर फिर भी यह समाज रूढ़ीवादी का त्याग पूर्णत: नहीं कर पाया है। समकालीन समाज सुखद अनुभूति

जीवित हो सकती है स्वधर्मी नातेदारी को हेय दृष्टि से न देखकर सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता है। जिसे समकालीन समाज विकसित हो सकता है परन्तु दुर्भाग्यवश हम रूढ़ीवादीता के चक्रव्यूह से नहीं निकल पा रहे हैं। कही खराब पंचायते, कही वर्णिक ग्रुप समकालीन समाज को जोड़ने के वजाय तोड़ने को तैयार है। इस समाज के आगे अहम् मुद्दा है जातिवाद जिसे उबर कर समानता को बल दिया जाना चाहिये। इससे समाज और देश को मजबूती मिलेगी। समकालीन समाज में जातीय विषमता, छुआछूत को समाप्त करने के लिए न तो सरकार ही ईमानदारी से काम कर रही है, न धर्म के सत्ताधीशों ने और न ही समाज ने। सत्ता के लिए जातिवाद का प्रयोग कर रहें है। इसी के कारण आज के विज्ञान के युग में भी निम्न वर्णो के दूल्हा को घोड़ी पर चढ़ने पर बवाल मच जाता है, मंदिर में जाने के लिए भी रोकना दंगे करना, यहा तक कि स्कूल में निम्न वर्णिक बच्चों को सामान्य वर्ग के बच्चों से दूर बैठाकर मध्यान्ह भोजन परोसा जाता है। आज के समाज में निम्न वर्णिक और महिलाएँ शोषण की शिकार हैं। उँच-नीच, अमीरी-गरीबी की बीच का भेद नहीं मिट पाया है। इतना ही नहीं श्रम मण्डी में भी पक्षपात हो रहा है। कोई संस्थान तो इतना बुरा है जहाँ निम्न वर्णिक का प्रवेश ही वर्जित जैसा है। यहाँ तक कि नाम बदल कर काम करना पड़ता है।

क्षेत्रीय विषमता के कारण विभिन्न स्वरूपों के इलाकों में भारतीय कृषि-क्षेत्र विभाजित है। क्रूर सामंती संबंधों से लैस भूमि के स्वामित्व का कृषि क्षेत्र, सिंचाई साधनों की प्रचुर उपलब्धता, आधुनिक तकनीक और साधनों से युक्त पूँजीवादी विकास की दिशा रखनेवाला कृषि क्षेत्र और सिंचाई विहीन व भूमिस्वमित्व के अल्प केंद्रीकरण वाला क्षेत्रीय शोषण का चरम शिकार कृषि क्षेत्र, इन तीन तरह के कृषि इलाकों का अस्तित्व समकालीन कृषि समाज में मिलता है। कृषि क्षेत्र का प्रभुत्वशाली वर्ग कृषि उत्पादन में लगे श्रम का शोषण कर रहा है। इसी तरह धनी किसान तथा पूँजीपति-वर्ग शोषण के हिस्से में असमान हिस्सेदारी के बावजूद अंतत: कृषि क्षेत्र में लगे श्रम का शोषण कर रहा है। खदान तथा जंगल की व्यवस्था निजी तथा राजकीय होते हुए भी पूँजीपतियों के हित में ही संचालित हो रही हैं।

समकालीन समाज इस समय एक अजीब स्थिति में है। वह आधुनिकता और परंपरा-दो विरोधी के और खींचा जा रहा है। परम्परा और आधुनिकता दोनों उसे अपनी अपनी ओर विपरीत दिशाओं में खींच रही है। उनकी मुठभेड़ से कुछ अजीबोगरीब नतीजे सामने आये हैं। देश ने एक ओर लोकतंत्र, समानतावाद, धर्मनिरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय की विचारधारा स्वीकार की है और उसे

प्रोन्नत कर रहा है, दूसरी ओर आधिकालिन निष्ठाएँ अब भी कायम है; शोषणमूलक संरचनाओं को कभी कोई गंभीर चुनौती नहीं मिली, परम्परा की विकल स्मृति को राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल किया जाता है तथा धार्मिक पुनरुत्यानवाद और परवर्ती कट्टरपन से कठोरतापूर्वक नहीं निपटा गया। "भावनात्मक तथा बौद्धिक जागरूकता के स्तर पर वर्ण और जाति के ढांचे के भीतर अंतर्निहित असमानता तथा अमानवीयता की निंदा की गयी है लेकिन इसे ढहाने का कोई सार्थक या महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया है। देश की लगभग आधी आबादी, जिसमें मुख्यत: अनुसूचित जनजातियाँ, अनुसूचित जातियाँ, तथा अन्य पिछड़े समुदाय हैं, संपूर्ण कृषि भूमि में केवल दस प्रतिशत की हिस्सेदार है।"[7] भारतीय समाज पर समकालीन चर्चा में 'गरीबी की रेखा' का उल्लेख काफी होता है। इस रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या कम करने के प्रयासों के बावजूद यह कमोबेश स्थिर रहती है। इसकी जिम्मेदारी मुख्यत: दो कारकों पर डाली जा सकती है: पहला तो अर्थव्यवस्था की संवृद्धि के मुकाबले आबादी अधिक तेज दर से बढ़ रही है, और दूसरा, अधिकतर विकार कार्यक्रम धनी और प्रभावशाली लोगों के पक्ष में है। समय के साथ घिस-पिट गये इस मुहावरे "धनी और धनी तथा गरीब और गरीब हो रहे हैं"। इस मुहावरे में काफी सच्चाई है। आज भारत की आबादी में लगभग आधे हिस्से को निधर्नता की संस्कृति सहनी ही पड़ती है। जिसे देश में सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार धीमी होती है जिसे तनावों व संघर्षों को जन्म देती है।

समकालीन समाज अंतविरोधी का पिटारा है जिसके कुछ पहलू अत्यंत पेचीदा हैं। जिसमें राजनीतिक प्रणाली की असामान्यताएँ भी विचारणीय है। संस्थाओं के क्षरण से वैधानिकता का संकट पैदा हो गया है। शासनों की नीतियों पर सत्ता हमेशा सवाल खड़ा करते रहते हैं। मतदाताओं को सामूहिक रूप से धमकाना तथा मतदान केन्द्रों में अपना कब्जा जमाना जिससे विश्वास में संकट उत्पन्न होता है। कभी-कभी तो राज्यव्यवस्था पर घोटालों और भ्रष्टाचारियों से हिल भी जाती है। इन सब से साख का संकट सामने आया है। अपराधियों, नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों का गठजोड़ पिछले दो दशकों में खुले तोर पर ताकतवर हुआ है। यही गठजोड़ राज्य व्यवस्था को अव्यवस्था की ओर धकेल रहा है। समकालीन समाज और संस्कृति के लिए इन राजनीतिक विरूपताओं के निहितार्थ वस्तुत: गंभीर हैं और समाज तथा संस्कृति से सरोकार रखने वाले प्रत्येक व्यक्तियों से गंभीर आत्मनिरीक्षण की मांग करते रहे हैं।

समकालीन समाज में अगर संस्कृति को देखा जाए तो सांस्कृतिक अस्मिताओं का निर्माण धर्म, क्षेत्र तथा जातियता के आधार पर हुआ है । जहाँ पर धर्म एक मिथ्या संकेत है । धर्म के अनुयायियों में विश्वास, उपासन पद्धतियों तथा कर्मकांडों के अलावा और कोई विशेष समानता दिखायी नहीं देती । यहाँ तक कि उपासना के रूपों और कर्मकांडों में भी संप्रदायगत क्षेत्रीय भिन्नताएँ होती है । अगर सांस्कृतिक दृष्टि से देखे तो हिन्दू समान नहीं हैं, न ही मुस्लिम ही समान हैं । ब्राम्हणों की बात करे तो तमिलनाडु और कश्मीर के ब्राम्हण अलग-अलग हैं । इसी प्रकार केरल और उत्तरप्रदेश के मुसलमानों की संस्कृति के अनेक पक्षों में भिन्नता है । क्षेत्रीय पहचान अधिक वास्तविक है । समकालीन समाज एक परिवर्तन के संवेगात्मक उददेग से गुजर रहा है और दुविधाओं एवं विड़बनाओं की एक श्रृंखला से मुठभेड़ कर रहा है । ये आहत करते हैं परन्तु ये अपरिहार्य है ।

2. ख. समकालीन हिन्दी कहानियों में चित्रित समाज

साहित्य के इतिहास में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है । दुनिया के लोगों ने इसे जीवन को समझने की कला तथा विधा के रूप में लिया है । जब भी साहित्य के इतिहास पर विचार होता है या बात होती है उसमें कहानी और उसके इतिहास तथा उसमें अभिव्यक्ति मानव जीवन के यथार्थ को बुनियादी तौर पर अलग से जानने की कोशिश होती है । चाहे वह प्रेमचंद-युगीन कहानी हो, नयी कहानी हो या फिर समकालीन कहानी हो । कहानी में मनुष्य के मन एवं समाज में उसकी उपस्थिति का कलात्मक आख्यान देखने को मिलता है । इसी कारण साहित्यक विधाओं के किसी विशेष कालखण्ड का वस्तुपरक अध्ययन हमें यह अवसर प्रदान करता है कि रचनाओं अथवा कहानियों में व्यक्त जीवन और समाज के साथ उसका यथार्थ संबंध को समकालीन संदर्भ में हम देख या विचार कर सकते हैं । उनमें मानव मात्र के लिए बना स्थान की खोज करे । कथा साहित्य में भी समकालीन कहानी का अध्ययन हमें इसी प्रकार का अवसर प्रदान करता है । समकालीन कहानी का जो इतिहास और स्वरुप है, उसका गहरा संबंध समकालीन समय के यथार्थ से है ।

समकालीन कहानी नई कहानी से अलग है क्योंकि जहाँ नई कहानी में अकेलापन, प्रेम, मोह संबंधों के टूटन आदि की पहचान की चिंता है, वहाँ समकालीन कहानी में सामाजिक समुदायों एवं समूहों द्वारा अपने वजूद के लिए किए जा रहे संघर्षों को देखने एवं उसे ऐतिहासिक दृष्टि से व्याख्यायित करने की चेतना दिखाई पड़ती है । इसीलिए, समकालीन कहानी में व्यक्ति और समाज

के साथ उसके संबंधों की बजाय, सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अन्दर और बाहर अस्तित्व रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष की चेतना अधिक दिखलाई पड़ती है। दुसरे शब्दों में, समकालीन कहानी में यथार्थ के निर्मित में जितने बड़े पैमाने पर हाशिये के समाज की भूमिका दिखलाई पड़ती है, उतना अन्य दौर की कहानियों में नहीं। समकालीन कहानियों में परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं से गुजरते हुए शेष समाज के साथ ही मुख्य धारा के अन्दर और बाहर हाशिये की जिन्दगी व्यतीत कर सामाजिक समूहों की चेतना को साफ-साफ देखा जा सकता है। खास बात यह है कि इस परिवर्तन और विकास की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के तहत समकालीन हिन्दी कहानी में निर्मित उन समाजों जैसे स्त्री, दलित, आदिवासी आदि की चिन्ताओं की अनुगूंजो को इतिहास से संवाद करते हुए साफ-साफ देखा जा सकता है। आज की दौर की कहानियों में जो है तथा जिसमें कहानीकारो ने कथावस्तु एवं उनमें चित्रित समाज को पारम्परिक विचारों की बजाय आधुनिक विचारों से जोड़ने पर अधिक बल दिया है। समकालीन हिन्दी कहानी में ऐसा दिखाई पड़ता है। इस दौर की कहानियों को पढ़ते हुए उसमें मौजूद सामाजिक समुदायों और समूहों की उत्पति की अवस्थाओं को सहज ही रेखांकित किया जा सकता है। यद्यपि इस दौर की कहानियों में गाँव और शहर दोनों हैं। खासकर शिवमूर्ति, संजीव, महेश कटारे आदि की कहानियों में। इस गाँव में समकालीन आतंक और भय आदि से टकरा रहें हैं। यहाँ पर घटनाओं प्रकृति, तथा चरित्रों में बिंब तथा संकेत की जगह वर्ण और वर्ग केन्द्रित संघर्ष ज्यादा है। इसी कारण इस समय की कहानियों में आये लोग और समाज कुछ अलग प्रकार की निर्मितियों को लेकर विकसित होते दिखाई पड़ते हैं। समकालीन कहानी में आम लोग, समूहों तथा सामाजिक समुदायों की उत्पति की अवस्था में हैं, वे इस समय की कहानियों की प्रवृत्ति पर कुछ अलग प्रकार से सोच विचार करने के लिए दबाव डालती है। चाहे वह स्त्री समाज हो या दलित आदिवासी हो अथवा हाशिये के अन्य समाज। समकालीन कहानीकारों ने इन समाजों पर अपनी कहानियाँ लिखी है। जिससे समकालीन समय और इतिहास के अनगिनत सवालों से टकराने का साहस दिखाया है। जहाँ पूँजीवादी सभ्यता में वस्तु बनते जा रहे मनुष्य की विडंबनापूर्ण जिन्दगी के यथार्थ को रचते हुए लोकतांत्रित व्यवस्था में उनकी मुक्ति के रास्ते तलाश रहे हैं।

समकालीन हिन्दी कहानी की एक ओर बड़ी विशेषता है इस आधुनिक समाज में गाँवों और शहरों में मुख्यधारा के अंदर और बाहर बेहतर जीवन के लिए संघर्षरत किसानों और मजदूरों की जिन्दगी के यथार्थ का चित्रण है। समकालीन कहानीकारों ने अपने काहानियों में मजदूरों की जिन्दगी के छोटे-छोटे सुख और बडे-बडे दु:खों को रचना का विषय बनाया है। इन समकालीन कहानियों में किसानों और मजदूरों की भूख, ऋणग्रस्तता, सामंती समाज द्वारा शोषण-दमन, जैसी समस्याओं को केंद्र में रखकर समकालीन कहानीकारों ने कृषक-मजदूर समाज द्वारा किये जा रहे प्रतिरोध और संघर्ष को उनके जिन्दगी के यथार्थ के रूप में चित्रित किया है।

हिन्दी कहानी के अन्य आंदोलन की उपेक्षा समकालीन कहानी में ही जीवन के सबसे अधिक कटु यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है। इस समय की कहानियों में सामाजिक यथार्थ के साथ राजनीतिक संदर्भो को भी समकालीन कहानी में बखूबी स्थान मिला है। गिरिराज किशोर की 'पेपरबेट' तथा 'अलग-अलग कैद के दो आदमी' ऐसी ही कहानी हैं, जहाँ पर व्यवस्था और राजनीतिक संदर्भ में व्यक्ति की विघटित आस्था व विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण हुआ है।

समकालीन हिन्दी कहानी अपने यथार्थ बोध, भाव-व्यंजना, मूल्य संक्रमण, नयी मूल्यों की स्थापना एवं राजनीतिक संदर्भो से प्रभावित होती हुई, आगे बढ़ी। अस्तित्ववादी दर्शन ने हिन्दी की समकालीन कहानी को मनुष्य के अकेलेपन, अजनबीपन, भयावहता, संत्रास, मोहभंग आदि की स्थिति एवं नये मूल्यों से परिचय कराया है। हिन्दी कहानी को देखे तो आज भी समकालीनता के दिशा बोध को ग्रहण करती दिखाई देती है और अपने नये रूपों के साथ उपस्थित- "समकालीन कहानी के लिए यथार्थ न कोई पैटर्न है, न प्रेम और न फामूर्ला। यह एक जटिल, संक्रमित प्रक्रिया है, जिसमें विसंगतियाँ हैं और उन्हीं में उभरती हुई संघर्ष चेतना के निर्णायक बिन्दु भी हैं। यह अपने मूल रूप में सामाजिक संकट और अस्तित्व संकट से जूझने वाला यथार्थ है।"[8]

समकालीन कहानियों की महात्वपूर्ण प्रवृत्तियों यथार्थपरकता, प्रामाणिकता तथा संघर्षशीलता को एक साथ अपनाता हुआ चलता है। कहानी चाहे समांतर हो या जनवादी या सक्रिय इस समय की कहानी सामाजिक जीवन से अपनी सम्बद्धता कायम रखते हुए, सामान्य जन की पक्षधरता निभाते हुए, मानसिकता तथा जीवन स्थितियों का चित्रण करते हुए गलत मान्यताओं, सामाजिक कुप्रवृत्तियों तथा भ्रष्ट व्यवस्या के प्रति आक्रामक, कारगर, सक्रिय तथा सजग भूमिका निभाती है। समकालीन कहानी

की एक और विशेषता है कि ज्यादातर कहानीकारों ने व्यवस्था के विरोध का चित्रण किया है। इस काल के सभी कहानीकारों ने व्यवस्था से कहानी को पकड़ा है और उसी के फलस्वरूप आदमी के अन्दर की यात्रा की है। समकालीन कहानी के माध्याम से ही जीवन की तड़प को, तड़प के कारणों को उकेरा है। जीवन में हो रहे संकट को, संकट से भरे जीवन को देखा है, जाना है। या फिर यह कहे कि यथार्थ को, यथार्थ जीवन की कहानी को प्रमुख कथन के रूप में जाना है। 'संकट का यथार्थ' या 'यथार्थ का संकट' ही कहानी का पहचान बनाता है। समकालीन कहानीकारों ने आतंक के यथार्थ को समझा तथा महसूस किया है। दलित, शोषित वर्ग को जागरूक किया और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति को उचित समझते हैं और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष से आतंक भी पैदा होते हैं और यही आतंक एक यथार्थ है। यह भी कह सकते हैं कि समकालीन कहानी का जीवन यथार्थ, परिवेश, अनुभव सब कुछ पुरानी कहानी की अपेक्षा भिन्न है, अलग है। यह आज जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर जीवन का साक्षात्कार कर उसके प्रति आस्था व्यक्त करके नये आश्रय ढूँढने का प्रयत्न कर रही है और कलात्मक स्तर प्राप्त कर मनुष्य और समाज के पारम्परिक संबंधों में समन्वय करने की ओर उन्मुख है तथा जीवन से साक्षात्कार करने का विराट साहस भी। जीवन से इतना अंतरंग परिचय कहानी से पहले नहीं हो पाया था कि जीवन और कृति को एक ही स्तर पर लिया जाए। आज के कहानीकार अपने चतुर्दिक व्याप्त परिवेश जीवन तथा समाज से ही पात्रों को लेकर कहानी की रचना करता है। उन्होंने समकालीन युगबोध को उसके ही सही परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है और उसके यथार्थ आयामों को सत्य अभिव्यक्ति देने में उनकी प्रतिबद्धता सम्मिलित है। कहानीकार जीवनगत परिवेश के प्रभाव से अपने जीवनबोध और जीवन साधन के अनुपात में अपनी अनुभूति से कथानुभव की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति कर पाते हैं, कहानी उतनी ही सार्थक, प्रामाणिक बनती है। इसलिए साहित्यकार की प्रतिबद्धता विचारधाराओं के अतिवाद को नकारती हुई सीधे जीवन से जुड़ती है। "मानव जीवन शाश्वत है। साथ ही साथ उनकी विवशताएँ तथा संघर्ष भी निरंतर है। वस्तुत: समकालीन कहानी मानवीय, प्रतिद्वद्विता के चित्रण के माध्यम से समय की विभीषिका से जूझते संघर्षरत मानव की जिजीविषय का संकेत करती है।"[9]

आज के व्यस्त जीवन में हर कोई एक दूसरे के लिए अजनबी सा हो गया है, यहाँ तक कि माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन आदि भी कुछ पल के लिए मिलते हैं तथा फिर समय के अभाव के

कारण अपने में ही संबद्ध हो जाते हैं। आज के इस विज्ञान के युग में किसी को भी एक दूसरे के निकट रहने का कोई मौका नहीं है। मानव जीवन भी यंत्र चालित होने के कारण तेज रफ्तार से भाग रहा है। इस भीड़-भाड़ में मानव के जीवन में तनाव, घुटन, अजनविपन, कुंठा आदि अनेक विसंगतियाँ आ रही है।

काशीनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, श्रवण कुमार, सुरेन्द्र अरोड़ा, शिवमूर्ति का रचना- संसार मनुष्य के अन्दर दबे हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म धरातलों को संघर्ष के उस स्तर पर व्यक्त करता है जहाँ स्थिति के ऊपर तटस्थता नहीं होती परन्तु जूझने की प्रक्रिया रहती हैं। रविन्द्र कालिया की कहानियों में समकालीन तनाव के सभी प्रकार के कोण विद्यमान हैं और उनकी कहानी संग्रह 'लोग बिस्तरों पर' में दस कहानियाँ हैं जो व्यक्ति के अंतद्वर्द्व को सभी प्रकार से (आतंरिक और बाहन स्थितियों) जोड़कर व्यक्त करने की क्षमता रखती है। उन्होंने संकट, कस्बा, जंगल और साहब की पत्नी, आदमी का आदमी आदि कहानियों में आधुनिक जीवन की विडंबनाओं, अतृप्त यौन भावना, विविध सामाजिक अभिशापों, भीड़ में खोये हुए इंसान, आधुनिक जीवन की बोरियत आदि का चित्रण प्रस्तुत किया है।

हरिप्रकाश, ममता कालिया, प्रयाग शुक्ल, उषा प्रियंवदा, सुधा अरोड़ा, सुदर्शन चोपड़ा, ज्ञानरंजन, अनीता, महेन्द्र भल्ला आदि समकालीन कहानीकारों की कहानियों का मूल स्वर जीवन की विद्रुपता और खोखलापन है। इस खोखले परिवेश में निम्न - मध्यवर्ग्यीय जीवन की विड़म्बना आदि को लेखकों ने अपने व्यंग्य प्रहारों का निशाना बनाया है। साथ ही अधिकांश कहनियों में आधुनिक जीवन का कटु सत्य उभारा गया है। समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को अत्यंत गहरे धरातल पर व्यक्त करती हुई मनुष्य की अस्मिता के संकट के साथ व्यापक स्तर पर मूल्य संकट के घेरों से जूझती है। यह कहने में कोई भी आपत्ति नहीं है कि समकालीन कहानियों का मूल उन तमाम स्थितियों से प्रेरित तथा संचालित है जो हर नैतिक दबावों के कारण व्यक्ति के अंतर्मन में आविर्भुत होता है। लड़ते संघर्ष की नियति, यथार्थ बोध, अपने अस्तित्व के संकटों और सही आदमी की तलाश में ये कहानियाँ आज के जीवन में नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान तथा यंत्र-तंत्र के विरोध में खड़ी होकर आदमी की वास्तविक चेतना को उभारती हैं।

अमरकांत की कहानी 'दोपहर का भोजन' में एक परिवार की आर्थिक स्थिति का वर्णन है जो परिवार आर्थिक स्थिति से उत्पन्न संकट से पूरा ग्रसित है। मोहन राकेश की कथा 'एक और जिन्दगी

में पति अपनी पहली पत्नी से खुश नहीं है तो वह उससे अलग हो जाता है तथा दूसरी शादी कर लेता हैं। समकालीन कहानियों में मुख्यत: आर्थिक संकट से उत्पन्न घुटन, यौन भावनाओं से उत्पन्न कुंठा, पति-पत्नी के संबंध में व्याप्त का चित्रण मिला है जो सभी प्रवृत्तियाँ समकालीन जीवन बोध के रूप में ग्रहण की गयी हैं जो जीवन में व्याप्त हैं, समाज जिसकी सृष्टि कर रही है और व्यक्ति उसका अनुभव। समकालीन कहानियों में समाज के इन विरोधाभासों, अर्थहीन आदर्शो, खोखली जीवन पद्धति तज्जन्य मोहभंग की स्थिति को व्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा है। इसके लिए कहानीकार ने कही संबंधों के तनाव को प्रस्तुत किया है साथ ही व्यंग्य को माध्यम बनाया है। व्यंग्य को समकालीन कहानी में नया स्वर मिला है।

समकालीन कहानी नयी कहानी का ही प्रसार या विकसित और संशोधित रूप है तो अनुपयुक्त नहीं होगा। समकालीन कहानी में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनछुए प्रसंग और स्थितियाँ अपने पूर्ण विवरणों में पूरी ईमानदारी से चित्रित की गयी। इस कारण समकालीन कहानी का यथार्थ बहुआयामी है। आज का कहानीकार समाज को जीवन्त स्थिति में स्वीकार कर उससे सम्बन्धित प्रश्नों को सुलझाने की पेशकश अपनी कहानियों में करता है। इस रूप में वह समाज के बीच अपनी सही भूमिका की तलाश करता है। यही समकालीन कहानीकार का आधुनिकता बोध का पिछले कहानीकार से रचना-प्रक्रिया का मौलिक अन्तर है। यथार्थ की जिस अवधारणा को लेकर समकालीन कहानीकार चला है, उसके कारण वह बहुत अंतरंग रूप से अपने परिवेश से जुड़ गया है। परिवेश से गंभीर रूप से जुड़कर ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती है। आज लेखक अपने हर तरफ जीवन देख रहा है, उसी की अपनी रचना में जी रहा ही। परिवेश के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी पक्ष उसके यथार्थ की प्रतीति करते हैं। इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में होने वाले पात्र और वस्तु या कथ्य परिवेश की इन्ही जीवन स्थितियों से उठाये हैं। समकालीन कहानियाँ हमें अपने समय की सच्चाइयों के दस्तावेज के रूप में दिखायी देती हैं। परिवेश के प्रति अतिशय संवेदनशीलता ने समकालीन कहानीकार में विशेष आत्मसजगता ला दी है। अपनी इस आत्मसजग प्रवृत्ति से वह कहानी में अपने परिवेश का अत्यन्त अंतरंग परिचय देता है। समकालीन कहानियों में परंपरागत विवाह संबंधी दृष्टीकोण आज पूरी तरह बदल गया है। आज के समाज में विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना के प्रति आस्था और विश्वास नहीं है। उसे बस एक सामाजिक समझौता के साथ रहने की

आवश्यकता भर रह गया है। समकालीन नारियाँ अपनी अस्मिता के लिए पुरुष का साथ चाहती हैं, परन्तु पति के रूप में छली कपटी आदमी को ढोने के लिए वह विवश नहीं रह गयी हैं। दिनेश पालीवाल की 'जो नहीं हुआ' की सभी निश्चय करती है कि "वह वापस उस नरक में नहीं जाएगी जहाँ उसे उपयोग की वस्तु की तरह इस्तेमाल किये जाने की साजिश चलती है और जहाँ उसे हर वक्त तौला जाता है- जब अस्तित्व का सवाल है तो वह अपने लिये जिएगी सिर्फ अपने लिए संवेदनशील मन के लिए।"[10]

इसलिए समकालीन कहानियों में प्रेम विवाह को पर्याप्त समर्थन दिया गया है और पारंपरिक विवाह पद्वति को नकारा गया है। अपने माता-पिता की मर्जी की परवाह न करते हुए सामाजिक मर्यादा एवं परम्परा के विरुद्ध प्रेमी प्रेमिका परिणय सूत्र में बंधने का साहस बटोरने लगे हैं। इस साहस के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने लोगों की सभी श्रेणीयों की समस्याओं को समानुभूति के साथ देखे, आर्थिक असमानताओं तथा अन्याय की समस्याओं के समाधान ढूंढे, जन चेतना को व्यापक आयाम देने के कार्यक्रम चलाये, मिथक की अधीनता के विरुद्ध इतिहास के सच्चे अर्थ का उन्नयन करे, तथा निर्णय करने में सहभागिता की प्रक्रियाएँ प्रारंभ करे। परम्परा के कुछ पक्ष अपनी जीवंतता तथा उपयोगिता के कारण जीवित रहेंगें जबकि अतीत के अनेक पर्तो वाले पूर्वाग्रहों को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा तथा शोषण और आतंक की संरचनाओं को ढाहाना होगा।

आज के इस युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में काफी भारी परिवर्तन आया है। आज लोगों के बीच अंतराल बहुत अधिक दिखायी देता है। मूल्यों का यह दुत परिवर्तन विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी में हुए तीव्र विकास का ही परिणाम है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नयी और पुरातन मूल्य दृष्टि का टकराव हुआ। मूल्यों के प्रति यह बदलती दृष्टि समकालीन समाज में पूरी तरह दिखाई पड़ता है। रिश्ते-नाते उन सबके संबंध में एक चिन्तन प्रक्रिया में एक बड़ा भारी अन्तर दिखायी देता है। आज के समय में सबसे अधिक प्रभाव मनुष्य के आत्मिक, पारिवारिक संबंधों पर पड़ा है। संयुक्त परिवार का विघटन, रोजी रोटी की तलाश में परिवार के सदस्य छोटी-छोटी इकाइयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे है। आज के इस समय में मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी हो गया है। आज बहुत सारे आत्मिक की बेमानी या बेमतलब का बोझ ढोने की रस्म-सी बना है। सारे संबंधों में दरार आ गयी है। समकालीन समाज में यही सब देखने को मिलता है। मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ आज

'नैतिकता' का अर्थ भी लुप्तप्राय हो गया है। समकालीन युग की जीवन-स्थितियों ने हमारे नैतिक प्रतिमानों को निर्ममता से तोड़ा है। आज धर्म और ईश्वर की धारणा में परिवर्तन आया है। विभिन्न दार्शनिकों द्वारा ईश्वर की सन्तों की अस्वीकृति ने पाप-पुण्य और उनके आधार पर दण्ड की मान्यता को बदल दिया। जिससे इस जीवन और लोक के पश्चात् दण्ड-विधान का जो भय था, वह समाप्त हो गया है। आज इस युग में समाज और नारी सशक्तिकरण के आयाम तो खुले है। शिक्षा, स्वास्थ, आर्थिक सम्पन्नता, गरीबी उन्मूलन, सामाजिक समानता आदि की भावना समकालीन समाज में हुई है। इस दृष्टी से देखे तो समानता और सम्पन्नता का शंखनाद माना जा सकता है।

समकालीन कहानी में जीवन यथार्थ का कोई भी अंग अनछुआ नहीं रहा है। जो आज के मनुष्य ने जिस-जिस रूप में जिन्दगी में देखा या भोगा, उस सबका प्रमाणिक दस्तावेज समकालीन कहानी प्रस्तुत करती है। संक्षेप में समकालीन कहानीकार अपने 'वर्तमान' में जो देख या भोग रहा है उसे पूरी शिद्दत से कहानी में उतार रहा है। इसीलिए कहा गया है सातवें दशक की कहानियों को तत्काल और फ़िलहाल के समयबोध के जरिये जीवन का साक्षात्कार करने वाली कहानी कहते है। समकालीन कहानीकार मनुष्य की चेतना को झकझोर और झिझोड़कर उन कारणों पर विचार करने के लिए बाध्य करती है। यहाँ कलाकार का सृजनात्मक संघर्ष है। उसे रचना करने में मानसिक यंत्रणा, तकलीफ से गुजरना पड़ता है। इसी कारण हमें समकालीन कहानी अपने बहुत-बहुत निकट महसूस होती है। युवा तथा युवतियों दोनों वर्ग में देखा जाने लगा है। नमिता सिंह की 'एक निर्णय' कहानी की मालती अपने दो चाहने वालों के बीच एक का चुनाव करती है जो उसकी भावनाओं की कद्र करता है वे ऊपर से प्रगतिशील है और भीतर से परम्परा पोशी प्रेमी को अपने से अलग कर देती है। रमेश वक्षी की कहानी 'खाली' की नायिका जिस युवक से प्रेम करती है उससे सामाजिकता को नकार कर शादी करना चाहती है। वह जानती है कि उसके विवाह को दोनों पक्ष के माता-पिता स्वीकार नहीं करेंगे। इसके बावजूद वह शादी करने को तत्पर है और अपने प्रेमी के मनोबल को ऊँचा उठाते हुए कहती है। "मैं तुम्हारे बगैर रह नहीं सकती और जो कुछ होगा उसे फेस कर जाने का निर्णय मन में बन गया है। हमें मम्मी-पापा से लड़ना तो पड़ेगा ही लड़ लेंगे, जो कुछ होगा सहेंगे जो भी जवाब देना होगा देंगे।"[11] समकालीन कहानियों में अर्जिका नारी को लेकर जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसे एक बाढ़ की ही स्थिति कह सकते हैं। आज की नारी की नवीनतम पहचान है उसका अर्जिका स्वरूप। समकालीन

हिन्दी कहानी का सशक्ततम पक्ष अर्जिका नारी का अंतरंग चित्रण है। मोहन राकेश की 'सुहागिनें' की स्कूल हेडमिस्ट्रेस पति से अलग रहकर कार्य करती है, यधपि भावनात्मक रूप से वे यह नहीं चाहती, वे पति का सान्निध्य चाहती है साथ ही संतान सुख चाहती है परन्तु पति पर कई पारिवारिक आर्थिक जिम्मेदारियाँ हैं। उनके रहते न पैसा अपने ऊपर व्यय कर सकती है और न ही शिशु का सपना देख सकती है, अर्जन कार्य उसकी विवशता है। आज समाज एक ऐसे मोड़ पर पहुँच गया है कि अब पुरुष विवाह संबंध के लिए नारी का नारीत्व नहीं, अपितु उसकी अर्जन क्षमता को आधार बना रहा है। इस तरह समकालीन संक्रमणशील समाज के जटिल यथार्थ के अंदरूनी कारकों को गहरी और विवेकनिष्ठ निगाहों से देखने-परखने वाली कहानी समकालीन समय में लिखि जा रही है। आज की कहानियों में समकालीन समाज का पूरा परिदृश्य शामिल है। उपभोक्तावाद के दबाव से मानवीय संवेदनाओं का खोजना, विकास कार्यो के साथ प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की वृद्धि, बदलते आर्थिक समीकरण, जातिगत संकीर्णता, निम्न और शोषित वर्ग में आई नई जागृति और उसकी विद्रोही मुद्रा आदि ये सभी स्थितियाँ समकालीन कहानियों में देख सकते हैं।

दलित चेतना का वर्चस्व स्वातंत्र्योत्तर भारत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वर्णाश्रम व्यवस्था का ऐसा अमानवीय दारुण रूप शायद ही कहीं और हो। समकालीन कहानियों में दलित चेतना को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी गयी है। भारतीय समाज में दलितों को मनुष्य भी नहीं मानते तो समकालीन कहानीकारों ने दलित चेतना को अहम मुद्दा बना कर अपने कहानियों में प्रस्तुत किया है। वरिष्ठ कहानीकार मार्कण्डेय की कहानी 'हलयोग' में मनुवादी व्यवस्था की क्रूरता चित्रित करती है। इस प्रकार की कहानियों में जुल्म प्राय: अशिक्षित अवर्णो पर होता हुआ दिखाया जाता है। इस कहानी में खास बात यह है कि शिक्षित चमार चौथीराम पर जुल्म किया जाता है। कहानी में दिखाया गया है कि अगर दलित ऊपर उठ जाए तो सवर्ण व्यवस्था को कितना मानसिक आघात लगता है, और वे दलित को ऊपर न उठ पाने के लिए कितना अनर्थक षड्यंत्र करते हैं। इस कहानी में पुरोहिताई, ओझाई, अंधविश्वास का कैसा उपयोग किया जाता है यह बहुत अच्छी तरह दिखाया गया है।

समकालीन कहानियों में ग्रामीण जीवन के जटिल अन्तर्विरोध हैं। पिछड़ों-दलितों की पीड़ा और कल-कारखानों में काम करने वाले मजदूरों का दु:ख-दर्द भरा जीवन-यथार्थ है। उद्योगों के

आधुनिकीरण में बढ़ती बेरोजगारी समस्या है। पीढ़ियों के साथ बदलते मूल्यों का द्वन्द्व है। यही नहीं आज समाज में धर्म को लेकर भी राजनीति चलती है, मन्दिर-मस्जिद की घिनौनी राजनीति साथ ही सिकुड़ती संवेदनशीलता और बढ़ता साम्प्रदायिक तनाव है। नेताओं के प्रभाव-पुंज की वैसाखी के सहारे सन्ता के गलियारे में पहुँचने के लिए शरीर और आत्मा को बेचने की त्रासदियाँ हैं। तात्पर्य यह कि समकालीन कहानियों में समकालीन जीवन का पूरा विस्तार हैं। अत: आज की उपभोक्तावादी संस्कृति ने समाज को अमानवीय बना दिया है। मनुष्य की आत्मा मरती जा रही है। आज के दौर में सब कुछ नकली होता जा रहा है। प्रेम,पारिवारिक-सामाजिक संबंध, संस्कृति, आचरण, राजनीति सभी में प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ गई है। पूरी पीढ़ी शापग्रस्त हो गई है। सबसे ज्यादा अधिक पतन की ओर राजनीति हुआ है। आज राजनीति एक पेशा बन गई है। शिक्षित लोगों में भी संकीर्णता, अंधविश्वास तथा घोर अनैतिकता व्याप्त है। अधिक से अधिक सुविधाओं को बटोरने की अंधी दौड़ में पूरा मध्यवर्ग क्रूर और अनैतिक होता जा रहा है। समकालीन कहानियों के माध्यम से समकालीन मध्यवर्गीय जीवन की इस क्रूर सच्चाई को व्यक्त करके हिन्दी कहानी को एक नया आयाम दिया है। यों तो आज का पुरा हिन्दी साहित्य मध्यवर्गीय जीवन चेतना की अभिव्यक्ति का ही परिणाम है परन्तु महत्वपूर्ण रूप से कहानियों में तो मध्यवर्ग का ही जीवन छाया हुआ है। लग-भग सभी कथाकार खुद भी मध्यवर्ग से आये हैं और उनका अनुभव-क्षेत्र भी मुख्यत: मध्यवर्ग तक ही है। उच्च वर्ग के चित्र कहीं-कहीं परिवेश को सार्थकता प्रदान करने के लिए अंकित हो रहे हैं। उच्च वर्ग और मध्य-वर्ग के बीच स्थित सुविधावादी वर्ग के प्रति भी आज के नये साहित्यकारों के मन में एक प्रकार का आक्रोश ही संचित है। इस कारण यह वर्ग व्यंग्य एवं कई व्यक्तियों के लिए माध्यम बनकर सामने आया। निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग ये दो ही आज सर्वाधिक घुटन का अनुभव कर रहे हैं। समाज के ये वर्ग एक ओर शिक्षित होने के कारण सर्वाधिक संवेदनशील हैं, दूसरी ओर आर्थिक दबाव भी सर्वाधिक इन्हीं को टूटने के लिए मजबुर कर रहा है। इसलिए इसी वर्ग की पीड़ा, दु:ख, दर्द, क्षोभ, विवशता, हीनता एवं संबंघगत जटिलता का चित्रण समकालीन कहानी में सबसे अधिक हो रहा है। भारतीय समाज में वर्षों से नारी, शोषण का शिकार होती आयी है। इसका मुख्य कारण है नारी की सामाजिक हैसियत जो पुरुष से सदैव कम रखी गयी है। इस पुरुषप्रधान समाज में नारी को पुरुष से बराबर के अधिकार प्राप्त नहीं है। भले ही आज नारी को पुरुष के बराबर हक तथा सामाजिक स्थान देने की बात कही जाने लगी है साथ ही पुरानी मान्यताएँ टूटी हैं, परन्तु फिर भी नारी का शारीरिक तथा मानसिक शोषण

किया जा रहा है, जो समाज में आम बात है। समकालीन कहानीकारों में हृदयेश, मिथिलेश्वर आदि की कहानियों में शोषण का शिकार मध्यवर्गीय तथा निम्नवर्गीय नारी का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार इस दशक में लिखी गयी अधिकांश कहानियाँ समकालीन परिवेश की विदूपताओं को उभारती हैं और संघर्ष चेतना के विविध रूपों एवं आयामों को रेखांकित करती हैं। समकालीन कहानियों में बुनियादी यथार्थ की पकड़ तथा मानवीय मूल्यों की पक्षधरता की तीव्र आकांक्षा झलकती है। पूंजीपति, जमींदारी-सामंती, शोषण-तंत्र में पिस रहे मजदूर किसान-दलित तथा आम जन के पक्ष को अपनी कहानियों में उभारा है। वर्तमान व्यवस्था की गलत कारगुजारियों के खिलाफ जन सामान्य का आक्रोश तथा रूढ़ियों अन्ध संस्कारों एवं विश्वासों के खिलाफ प्रतिक्रिया समकालीन कहानियों में अभिव्यक्त हुई है। आधुनिक संक्रमण के युग में निम्नमध्यम-वर्गीय पारिवारिक स्थितियाँ तथा स्त्री-पुरुष की मानसिक छटपटाहट तथा वैयक्तिक टूटन को भी समकालीन कहानियों में उजागर किया गया है। उपर्युक्त कहानीकारों की कहानियाँ जहाँ निम्न मध्यवर्ग के दु:ख, दर्द, संघर्ष को उकेरती हैं वहीं जनसामान्य को सामाजिक बदलाव के लिए जागरूक करती हैं। इस दशक में रची गयीं तथा आज लिखी जा रहीं कहानियों को पढ़कर एक बात तो खुले रूप से आगे आती है कि कहानीकारों ने अपनी सामाजिक सांस्कृतिक जिम्मेदारी को समझते हुए भारतीय जन-जीवन के विविध एवं यथार्थपरक चित्र उकेरे हैं। इस प्रकार अलग-अलग रंगतों की समस्त कहानियाँ प्रगतिशील सोच और संवेदना को संप्रेषित करती हैं, जिसे कि आज की कहानी का महत्वपूर्ण रुझान कहा जा सकता है।

संदर्भ :

1. सोसाइटी, मैकाइवर और पेज, पृ. सं. 4
2. साहित्य कुञ्ज, अप्रैल 2012, पृ. सं 42
3. वही, पृ. सं. 42
4. वही, पृ. सं. 42
5. वही, पृ. सं. 42
6. समाजशास्त्र, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ. सं. 278
7. भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, पृ. सं. 56
8. समकालीन कहानी की पहचान, नरेन्द्र मोहन, पृ. सं. 47
9. समकालीन हिन्दी कहानी बदलते जीवन-संदर्भ, शैलजा, पृ. सं. 67
10. सारिका, सं. दिनेश पालीवाल, पृ. सं. 83
11. एक अमूर्त तकलीफ, रमेश वक्षी, पृ. सं. 34

तृतीय अध्याय

शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज के विविध आयाम

3. क. वर्ण और जाति

वर्ण हिन्दू धर्म में सामाजिक विभाजन का एक आधार है। हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार समाज को चार वर्णों में बाँटा गया है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। विद्वानों का मानना है कि आरम्भ में यह विभाजन कर्म आधारित था लेकिन बाद में यह जन्म आधारित हो गया। वर्तमान का हिन्दू समाज इसी विकसित जाति के रूप में देखा जा सकता है। भारतीयों की पहचान कई प्रकार से होती है। संदर्भ से यह निर्धारित होता है कि वह अपनी पहचान किस रूप में कर सकता है। कुछ संदर्भो में धर्म, निवास स्थान या परिवार सूचक नाम पर्याप्त हो सकता है। लेकिन अन्य स्थितियों में उसे अपनी जाति, गोत्र और कुल का विवरण भी देना पड़ता है। जाति को अंग्रेजी में सामान्यत: कास्ट(caste) कहते हैं। परन्तु 'कास्ट' शब्द का इस्तेमाल अनेक अलग-अलग अर्थो में किया जाता है। यह एक पूरे वर्ण अथवा एक समान नाम वाले जाति समुच्चय और अपने समूह के भीतर विवाह करने वाले (अंतर्विवाही) समूह का द्योतक हो सकता है जिसका परिभाषित जन्मना परिस्थिति है अथवा ऐसे समूह का द्योतक भी हो सकता है जो वर्ण का उप-विभाग अथवा उससे छिटक कर अलग हुआ समूह हो। तो दूसरी ओर 'गोत्र' जाति का अपने समूह से बाहर विवाह करने वाला उप-विवाह होता है। व्यक्ति अपनी जाति में किन्तु अपने 'गोत्र' से बाहर विवाह करता है। वर्ण और जाति का विस्तार निम्नलिखित हैं –

वर्ण

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में वर्ण केवल संदर्भ के काम आने वाला वर्ग है। यह सामाजिक संरचना की सक्रिय इकाई नहीं है। यह केवल भिन्न-भिन्न जातियों की जन्मना प्राप्त परिस्थिति के बारे में ऊपरी जानकारी देता है। यह वर्गीकरण का काम भी करता है। वर्ण के अन्दर समान जन्मना आनुष्ठानिक परिस्थिति वाली अनेक जातियाँ एक साथ समूहबद्ध होती हैं और उनकी जगह निर्धारित होती है। उपरोक्त तीन जगह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और चौथे स्तर पर शूद्र हैं। यह व्यवस्था सीधी-सादी और आकर्षक तो है परन्तु बहुत आदर्शीकृत तथा अतिसरलीकृत भी है। यह गुणवत्ता और कार्य

तथा जैविक संलग्नता के आधार पर समाज के ऊपरी तौर पर किए गये विभाजनों का ढाँचा प्रदर्शित करती है। सामाजिक व्यवस्था के कार्य संचालन में वर्ण का उपयोग सीमित है। वे जन्मना परिस्थिति, सामाजिक जीवन के कुछ क्षेत्रों में विशेषीकृत प्रकार्यो तथा आचार-व्यवहार के मानदंडों की अपेक्षाओं के स्थूल और तैयार संकेतक ही प्रदान करते हैं। दैवी उत्पति का सिद्धांत सुप्रसिद्ध है और वर्णो की उत्पति की व्याख्या करते हैं। इसका उदाहरण अक्सर दिया जाता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इसकी शुरुआत देखी जा सकती है। मान्यता है कि समाज के ये चार वर्ग पुरुष सृष्टा प्रथम अस्तित्व के आत्मबलिदान से उत्पन्न हुए। कहा गया है कि पुरुष ने स्वयं को इसलिए नष्ट कर दिया ताकि एक सामाजिक व्यवस्था जन्म ले सके। कहा जाता है कि ब्राह्मण उसके सिर से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र चरणों से उत्पन्न हुए हैं। यही चारों वर्णो के पद और कार्यो का प्रतीकात्मक विवरण है। सांस्कृतिक देह-छवि में सिर, भुजाएँ, जंघाएँ एवं पैर अवरोही क्रम में हैं। ब्राह्मणों को ज्ञान प्राप्ति और उसका प्रचार-प्रसार एवं यज्ञ कराने का कार्य मिला जो सर्वाधिक सप्रतिष्ठा प्राप्त की थी। पद के क्रम में इसके बाद रक्षा और युद्ध के कार्य थे जो क्षत्रियों को सौंपे गये। उसके बाद तीसरा स्थान व्यापार, वाणिज्य तथा कृषि का था जो वैश्य का काम है और अंतिम है शिल्प तथा श्रम द्वारा दूसरों की सेवा जो शूद्रों का काम था। यह काम सबसे निम्न कोटि का था। हिन्दू समाज के विकास के प्रारंभिक चरण-वैदिक काल में वर्ण महत्वपूर्ण तत्व थे।

जाति

जाति शब्द का प्रयोग विभिन्न संदर्भो में और भिन्न सामाजिक श्रेणियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जाति शब्द का इस्तेमाल उस अंतर्विवाही समुदाय के लिए किया जाता है जिसकी आनुष्ठानिक परिस्थिति कमोबेस परिभाषित है साथ ही जिसके साथ कोई व्यवसाय पारंपरिक तौर पर जुड़ा हुआ है। जाति में प्रथम तीन उच्चतर वर्णो का उल्लेख उनके मूल नामों से किया जा सकता है यद्यपि वास्तविक जातियाँ उनके उप-विभाग हैं। दूसरे कुछ जाति समूहों का नाम एक ही है और वास्तविक जाति की पहचान इस सांझे नाम के साथ कोई उपसर्ग या प्रत्यय जोड़कर की जाती है। यह प्रथा तमिलनाडु और केरल में प्रचलित थी। हालाकि कानून अस्पृश्यता का उन्मूलन हो गया है और अनुसूचित जातियों को सिद्धांत रूप में समान मान लिया गया है। परन्तु फिर भी द्वेषपूर्ण भेदभाव अब भी किया जाता है तथा भेदभाव के सूक्ष्म रूप अब भी मौजूद हैं। वर्ण और जाति की धारणाओं की

पकड़ ऐसी है कि उसने हिंदू धर्म से आगे बढ़कर अन्य धर्मो पर भी अपनी जकड़ बना ली है। जाति और वर्ण को भारतीय समाज के लगभग सभी हिस्सों में सक्रिय देखा जा सकता है। समाज सुधारक भी इस रुझान को बदल पाने में असफल रहे हैं हालांकि कुछ समाज सुधारकों ने इसे बदलने के लिए कड़ी मेहनत की थी।

भारतीय जाति व्यवस्था में कुछ जातियाँ उच्च, पवित्र, शुद्ध और सुविधा प्राप्त है तथा कुछ निकृष्ट, अशुद्ध, अस्पृश्य और असुविधा प्राप्त हैं। ब्राह्मण पवित्र और पूज्य है और उन्हें अनेक धार्मिक, सामाजिक तथा विशेषाधिकार प्राप्त हैं। इनके विपरीत अस्पृश्य जातियाँ हैं। साथ ही भारत में जमींदारी प्रथा और सामंतवाद का बोल-बाला भी रहा है। हमारे यहाँ लोगों पर दोहरी मार रही है गरीबी की मार और जातिवाद की मार। सवर्णों की अवर्णों पर शासन की मार। स्त्री सब देशों में और भी बुरी तरह शोषित दमित हुई है। निम्न वर्ण की गरीब स्त्री उच्च जाति के स्त्री–पुरुष द्वारा सताई जाती है, उच्च वर्ण द्वारा उसका शोषण होता है और वह अपने लोगों के बीच भी चैन से नहीं रह सकती है। अपने वर्ण और वर्ग के पुरुषों द्वारा भी उसका दोहन होता है। शिवमूर्ति की कहानियों में इन्हीं दो वर्णो के बीच भेदभाव मौजूद है। उनकी कहानियों में निम्न जातियों की पीड़ा, तड़प, आदि मौजूद है। उन्होंने समाज में हो रहे जातिगत भेदभाव को अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है। शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ तथा अन्तर्विरोध अपने नग्न यथार्थ के रूप में देखी जा सकती है। जहाँ जाति की गहरी जड़े मानव के संबंधों को तार-तार करती नजर आती हैं। जहाँ दलित स्त्री को बहुत यातनाओं और विवशताओं से लगातार जीना पड़ता है। 'अकालदण्ड', 'कसाईबाड़ा', 'तिरियाचरित्तर' आदि कहानियों में इस यथार्थ को स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। जिन्हें शिवमूर्ति यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों में चित्रित समाज आजादी के बाद की है, जहाँ विकास के नाम पर गाँव का दोहन तो हुआ ही, लेकिन निचली पायदान पर खड़ा व्यक्ति, व्यक्ति नहीं रह पाता है। जहाँ पर साधारण जन के लिए साँस लेना भी दूर्लभ है। पंचायती राज के नाम पर दलितों का शोषण आम बात हो गयी है। जिसे शिवमूर्ति अपनी कहानियों में पूरजोर ढंग से उठाते हैं। उनके कथा साहित्य का फलक इतना व्यापक है कि उसकी परिधि में पूरे देश का वह सारा वंचित वर्ग शामिल हो जाता है, जो सदियों से उम्मीदों के सहारे जी रहा है कि कभी तो उसके दिन बदलेंगे। इस

आशा और निराशा के बीच किसान, दलित और स्त्रियाँ झूल रहे हैं। शिवमूर्ति के कथा साहित्य के अनुशीलन और विमर्श से यही बात निकलकर सानमे आती है।

भारतीय समाज में वर्ण और जाति को एक विशिष्ट स्थान दिया जाता है। इसी वर्ण और जाति को लेकर शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में बखूबी से प्रस्तुत किया है। उनकी लगभग सभी कहानियों में निम्न वर्ण की स्त्री का संघर्ष है। वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है फिर क्षत्रिय, वैश्य और अन्त में शूद्र। जिस प्रकार संसार का हर एक जीव अपने से छोटे एवं कमजोर जीवों पर अधिकार दिखाता है और उसका शोषण करना अपना अधिकार मानता है, ठीक वैसे ही वर्ण व्यवस्था में भी उच्च वर्ण का प्रतिनिधि उससे निम्न वर्ण का शोषण करता है। एक वर्ण दूसरे वर्ण का शोषण करता है तब शोषित वर्ण असहाय होकर शोषण को सहता है। परन्तु शोषण की सीमा प्राप्त होने पर वह शोषक अपनी आवाज उठाता है जिससे संघर्ष का निर्माण होता है। शिवमूर्ति कहानी 'अकाल-दंड' की शुरुआत से ही पता चल जाता है कि किस प्रकार यहाँ शोषण हो रहा है और शोषित होने वाले आवाज भी नहीं उठा पाते "सुरजी के साथ सिकरेटरी बाबू ने गजब कर दिया। लेकिन उसने इस हादसे के बारे में किसी से मुहँ नहीं खोला, क्या फायदा? सिकरेटरी के खिलाफ इस गाँव में बोलने वाला कौन है ? उलटे अपने ही 'पत-पानी' से हाथ धोना पड़ेगा।"[1] इस तरह एक उच्च जाति के लोग निम्न जाति के स्त्री पर अत्यचार करते हैं और शोषित स्त्री अपने न्याय के लिए कुछ भी कर नहीं पाती पर जब शोषण हद से ज्यादा होता है तो वे अपने को बचाने के लिए कुछ भी करने को तैयार होती है और इस कहानी में एक शोषित स्त्री जो निम्न जाति से है उसका नाम सुरजी है वे भी शोषण के विरुद्ध लड़ने को तैयार होती है। "कहाँ चौबीस-पच्चीस की सुरजी, कहाँ पचास-पचपन के सिकरेटरी बाबू। चार ही लतेरे में उनका भाँग का नाश गायब हो जाता है। लात का पक्का धक्का पिछवाड़े लगता है तो औधे मुहँ जाकर बाँस के चौखट से टकराते हैं। आगे के दोनों दांत-घोडा-दन्त निकल भागे।"[2] इस कहानी की नायिका सुरजी है जो दलित जाति से है, साथ ही गरीब घर की बहु है उसके पति साल भर पहले घर से दूर पैसा कमाने के लिए चला गया है। इस कहानी में हर मोड़ पर निम्न जातियों का संघर्ष है। नारी के शोषण से लेकर राहत सामग्री एवं रोजगार तक निम्न जातियों को दबाया गया है तथा उनका शोषण किया गया है। कहानियों में प्राय: हमारे ग्रामीण समाज में हो रहे सामाजिक अन्याय, शोषक

व दमन का स्पष्ट व नंगा रूप उभरकर अभिव्यक्त होता है। भारतीय समाज में जातीय ऊँच-नीच सबसे बड़ा अभिशाप है। वर्ण भेद कर्मणा है, यह बताने-समझाने वाली ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने जोड़ा इसे हमेशा जन्म से ही है। यह वह व्यवस्था है, जो जन्म से ही कर्म-क्षेत्र, गुण दोष, सामाजिक स्तर, आचरण नियमावली तथा भविष्य तय कर देती है। शिवमूर्ति जब 'अकाल दंड' कहानी में रंगी बाबू नामक दबंग के मुहँ से अपनी इज्जत बचाने के लिए प्रतिरोधशील सुरजी के बारे में यह कहलवाते हैं, तब वे इसी विडंबना की ओर इशारा कर रहे होते हैं, "नीच जाति है तो दूध की धोई होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। ये तो पेट से छल-छन्द लेकर उपजती हैं।"[3] कानून-व्यवस्था की लाचार हालत के कारण हमारे गाँवों में दबंगों का साम्राज्य स्थापित है। कोई उनके खिलाफ मुहँ नहीं खोल सकता है। 'अकाल दंड' कहानी में प्रतिरोध करती सुरजी भी अंतत: गाँव के दबंग रंगी बाबू से डरकर उसकी चाल का शिकार हो जाती है। आज भी गाँवों में जाति प्रथा कायम है, जब कि शहरों में ऐसी जात-पात की प्रथा तथा भावना नहीं होता। पर गाँवों में जात-पात के नाम पर आज भी छुआ-छूत की भावना है। दलितों के साथ बहुत अन्याय होता है सिर्फ इसलिए कि वे लोग दलित है। आलोचक रानी कुमारी इस बात को सिद्ध करती हुई कहती है कि -"अभी भी गाँवों में जात-पात के नाम पर छुआ-छूत होता है। शोषण होता है। दलितों की बहन-बेटियों की इज्जत के साथ खेला जाता है। सिर्फ इसलिए कि वह दलित हैं। शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' और 'अकाल दण्ड' में भी कुछ ऐसा ही होता है। शहर गाँवों का शोषण करते हैं और गाँव दलितों का।"[4] शिवमूर्ति की चर्चित कहानी 'कसाईबाड़ा' में गाँव के प्रधान ने आदर्श विवाह के नाम पर सामूहिक इंटरकास्ट मैरिज करवाई है। जिसमें हर एक कन्या-पक्ष हरिजन है। इस सामूहिक विवाह करवाने के पीछे प्रधान की बहुत बड़ी चाल है। एक प्रकार से भोले-भाले गाँव वालों के सामने संत बने रहते हैं। इस विवाह का दूसरा पक्ष भी है जो काफी दर्दनाक है। जिन हरिजन लड़कियों की शादी हुई है। उन्हें शादी के नाम पर देह-व्यापार मिला है। यह उन हरिजन कन्याओं पर शोषण का एक नया हथियार है। इन झूठी शादी के कारण उन गरीब हरिजन लड़कियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ किया जाता है। कोई सोच भी नहीं सकता कि इस सामूहिक विवाह के पीछे इतनी दर्दनाक कहानी होगी। आज के समाज में स्त्री के लिए समाज की सोच बहुत ही बुरी है जिसे एक लेख में अनीता भारती कहती है –"इस पूँजीवाद और ब्राह्मणवादी व्यवस्था में स्त्री उपभोग का सामान बन गई है। पूँजीवाद के युग में बाजार और ब्राह्मणवादी ताकतें

उसकी दो छवि गढ़ रहीं हैं। पहली तो वह भारतीय स्त्री की या फिर दूसरी उस आधुनिक स्त्री की जो शराब, सिगरेट पीती हुई कम कपड़ों में दिखाई देती है। एक मनुष्य से ज्यादा वह एक वस्तु के रूप में बार-बार पेश की जा रही है।"[5] शिवमूर्ति की कहानियों में निम्न जातियों के स्त्री की वेदना, तड़प, शोषण है। वे 'कसाईबाड़ा' कहानी के माध्यम से यह बताने की कोशिश करते हैं कि पूरे गाँव में कसाईबाड़ा चल रहा है। चाहे वो प्रधान हो, लीडर हो या फिर दरोगा। तीनों ही कसाई हैं। छोटी-सी घटना को आधार बनाकर लेखक ने एक बड़े रहस्य का उद्घाटन किया है। कहानी में और भी ऐसी बातें हैं जैसे दलितों के खिलाफ षड्यन्त्र, देह-व्यापार, उच्च पदों पर रहने वाले लोगों का आतंक, भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि। वंचितों से उनके संसाधनों को हड़पा जा रहा है। दलितों का प्रयोग जानवरों की तरह किया जा रहा है। यहाँ दलित स्त्री का बहुस्तरीय शोषण हो रहा है। शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री-अस्मिता और जाति का सवाल अहम मुद्दा है। उनकी इस कहानी में भी दलित स्त्री की वेदना तथा दु:ख का वर्णन है।

शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' की नायिका विमली है जो निम्न जाति से है। विमली की शादी बचपन में ही हो जाती है। निम्न जाति में बाल-विवाह की प्रथा आज तक खत्म नहीं हुई है। इन लोगों के पास स्थायी संपत्ति नहीं होती, इसलिए बचपन में ही उन लोगों को दूसरे के घरों में या खेतों में लड़कियों को काम के लिए जाना पड़ता है। विवाह इन लोगों के लिए एक प्रकार से सुरक्षा कवच है। पूरे भारत में ऐसे करोड़ों की संख्या में बाल मजदूर हैं, जिन्हें पढ़ाई से ज्यादा पेट की चिंता है। विमली बचपन से ही अपने पेट पालने के लिए सरपंच के घर झाड़ू-पोछा करती थी। निम्न वर्ण के बच्चों को यही सब करना पड़ता है। ये बच्चे कभी आर्थिक तंगी के कारण तो कभी उन उच्च जातियों के कारण ऐसे काम करते हैं। जातिगत विभेद और उनके परिणामस्वरूप होने वाले अन्याय और हिंसा आज भी सामाजिक जीवन और व्यवहार में जारी है। हम इस स्थिति को जानते हैं और गहरी पीड़ा के साथ इसे स्वीकार करते हैं। पर कोई क्या कर सकता है, गाँवों में जब जात-पात का बोल-बाला तथा उच्च जाति के दबाव हो तो। शिवमूर्ति ने अपनी इस कहानी में इसी बात का वर्णन किया है। दलितों के लिए आर्थिक समस्या एक बड़ी समस्या है। वे आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं यह भी एक बड़ा कारण है। इन लोगों का शोषण ज्यादातर उच्च जाति के लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण होता है तो कहीं न कहीं दलितों के शोषण का एक मुख्य कारण गरीबी भी है।

यह बात शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहानियों में ज्यादातर जाति और स्त्री-अस्मिता पर सवाल उठाया है। शिवमूर्ति की एक बहुत ही प्रचलित कहानी है 'केशर-कस्तूरी' इस कहानी की नायिका केशर है। केशर का बाल-विवाह हो चुका है। उसके अन्दर बहुत सी योग्यता मौजूद है पर उसे अपनी गरीबी की वजह से अपनी योग्यताओं को साबित करने का मौका नहीं मिलता है। गाँवों में दलित एवं गरीबों को अपने प्रतिभा को दिखाने का तथा साबित करने का मौका नहीं मिलता क्योंकि उनके पास न पैसा होता है और न लोगों के सामने बोलने की हिम्मत। आलोचक रानी कुमारी इस बात को उल्लेख करती हुई कहती है कि - "दलित समाज में प्रतिभा की कमी नहीं है, कमी केवल अवसरों की है। केशर एक ऐसी लड़की है जिसे अवसर मिले तो उसकी योग्यता कस्तूरी सुगन्ध की तरह चारों तरफ फैल जाएगी। लेकिन वहाँ गरीबी, बाल-विवाह के भँवर में फँसकर दारुण नियति को प्राप्त होती है। यह एक ऐसी अनूठी कहानी है जो दलित साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। कितनी ही केशर हैं जो तमाम गुणों, योग्यताओं के बावजूद नरकीय जीवन जी रही हैं। केशर दलित स्त्री की वह अनगढ़ मूर्ति है जो कायदे से गढ़ी, तराशी जाए तो महान विभूति बन सकती है।"[6] शिवमूर्ति ने 'केशर कस्तूरी' कहानी में बहुत ही अच्छी तरह से एक गाँव की दशा को तथा गाँवों में होने वाली स्थिति को बताया है। गाँवों में जाति प्रथा बहुत है, इस कहानी की नायिका केशर एक दलित स्त्री है जिसकी शादी बचपन में ही हो जाती है और वो उसे अपना भाग्य मान कर जीती है। यही गरीब निम्न जाति के साथ होता है। वे कुछ करने की तो सोचते हैं पर आर्थिक अभाव के कारण कुछ भी नहीं कर पाती।

शिवमूर्ति की कहानियों में आत्यंतिक विशेषता है - रचना का जीवन से महत्वपूर्ण साम्य होना। जीवन और समाज में जो होता है, जैसा होता आया है, उन सबको ये कहानियों में इस्तेमाल करते है विस्तार पूर्वक और विश्वसनीय तरीके से। जीवन से साम्य और वंचित, शोषित के पक्ष में खड़े होने की प्रवृत्ति, रचनात्मक दृष्टीकोण और विचारधारा आदि के सहारे अपनी प्रत्येक कहानी में ये एक किस्म की संरचनात्मक परिपूर्णता पाने की कोशिश करते हैं। प्रमुख आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी इस बात को सिद्ध करते हुए कहते हैं कि - "शिवमूर्ति ऐसे रचनाकार हैं जिनको गाँव के किसानों-छोटे किसानों के जीवन, उनकी समस्याओं की केवल जानकारी भर नहीं, वे उनके दुःख-सुख से तादात्म्य हैं - लेखक के रूप में। व्यक्ति के रूप में तो वे खुद छोटे किसान के ही कुल के हैं। इसलिए उनकी

कहानियों में इतनी विश्वसनीयता वह कथा रपट भी लगती है। उसमें, इसलिए भरपूर नाटकीयता है। उनकी कहानियों की भाषा अपने-आप में एक सिद्धी है।"[7]

शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन में दलित स्त्री के शोषण को जिस प्रकार से अपनी कहानियों में दिखाया है, वह दुर्लभ है। उन्होंने दलित स्त्री के शोषण को कई स्तरों पर देखा है। उन्होंने उनके शोषण की वह पीड़ा भी लिखी है, जिसे वह अपने ही परिवार में, अपने लोगों के कारण ही झेल रही है, वहाँ शोषक कहीं बाहर नहीं है, घर में ही है, उसका अपना ही कोई है। इसी कारण उनकी कहानियों के दलित स्त्री चरित्र बहुत प्रभावशाली हैं, जिसमें 'तिरिया चरित्तर' की नायिका को भुलाया नहीं जा सकता। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में जाति व्यवस्था तथा सवर्ण बिरादरी के द्वारा निम्न वर्णों का शोषण करने की, अत्यचार करने की कथा का वर्णन किया है कहीं-न-कहीं यही सब उन्होंने भी अपने जीवन में भोगा है। आलोचक माताफेर सिंह ने अपने एक लेख में कहा है -सवर्ण जातियों के अपने काम धन्धे की ओर ध्यान देने और अवर्ण जातियों की आर्थिक शैक्षिक व सामाजिक स्थिति में सुधार होने के चलते अब दोनों के बीच शक्ति संतुलन बनता जा रहा है इसलिए निम्न जाति के किसी होनहार को आगे बढ़ते देखकर उनके मन में जलन तो अब भी होती है लेकिन पहले की तरह ऐसे किसी युवक को षडयंत्र करके फौजदारी या चारित्रिक अपराध में फँसाकर ध्वस्त कर देने की घटनाएँ लगभग नहीं होती लेकिन शिवमूर्ति की किशोरावस्था में यह प्रवृत्ति बहुत ज्यादा थी। खुद शिवमूर्ति की किसी प्रतियोगी परीक्षा का प्रवेश पत्र या साक्षात्कार का काल लेटर कभी उनके घर नहीं पहुँचा। बीच में ही गायब कर दिया जाता था। यह तो शिवमूर्ति की अपनी व्यवस्था थी कि उन्हे हर चीज की जानकारी समय से हो जाती थी और वे लोग उनका कभी कोई नुकसान नहीं कर पाये।"[8] उन्होंने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया है और इसे गाँवों में देखा भी है। वही सब देखी बातों को तथा भोगे हुए कष्टों को अपनी कहानियों में रेखांकित किया है। गाँवों में जिस तरह से जातिगत भेद-भाव होता है उन्होंने ज्यों - का - त्यों अपने कहानियों में व्यक्त किया है।

शिवमूर्ति की कहानियों में जिस तरह के जातिगत भेदभाव हैं वे आज भी हमारे देश के गाँवों में मौजूद हैं। गाँवों में जाति के नाम पर गरीबों का शोषण होता था और आज भी हो रहा है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस बात को लोगों के बीच लाये हैं। आज के समय में भी गाँवों में उतना कुछ नहीं बदला है गाँवों के लोगों की सोच आज भी वही है जो सालों पहले थी।

शिवमूर्ति की कहानियों में भी वही गाँव है जो सालों पहले था और आज भी है यहाँ जाति, वर्ण आदि के नाम पर अन्याय, अत्यचार, शोषण हो रहा है।

2. ख. पारिवरिक व्यवस्था

मानव समाज में परिवार एक बुनियादी तथा सर्वाभौमिक इकाई है। यह सामाजिक जीवन की निरंतरता, एकता एवं विकास के लिए आवश्यक प्रक्रिया है। अधिकांश पारंपरिक समाज में परिवार, सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधियों एवं संगठनों की बड़ी इकाई हैं। अपने साधारण अर्थ में इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक परिवार के लोगों में एक-दूसरें से प्रेम, सहयोग तथा एक दूसरों के दु:ख तकलीफों को जानने, समझने की क्षमता यदि हो तो परिवार व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ सकता है। इसी कारण एक परिवार में परस्पर स्नेह जिम्मेदारियों का अहसास होना जरूरी है। लेकिन शिक्षा का अभाव, परिवार की सुविधाओं का अभाव, वैयक्तिक स्वार्थ आदि के कारण से पारिवारिक एकता टूट सकती है। भारतीय जीवन में स्वाधीनता के बाद से जीवन में संबंधों का तनाव, नये संबंधों की तलाश तथा नई और पुरानी पीढ़ियों के बीच के संघर्ष नये सामाजिक मूल्यों के रूप में उभर रहे हैं। इतिहास में देखें तो पारिवारिक संघर्ष सनातन काल से ही चले आ रहे हैं। आज के समय में देखें तो सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में जिस तरह के संघर्ष उभर रहे हैं उनका दृष्टिकोण एकदम नवीन है। पुराने सामाजिक जीवन मूल्य आज पूरी तरह से लुप्त हो चुके हैं और नए मूल्यों ने उनका स्थान ले लिया है। व्यक्ति अपने ही स्वार्थ के लिए यथार्थ और आदर्श के बीच पीसता जा रहा है। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन आदि पवित्र रिश्तों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। मनुष्य को आज संघर्षों ने घेर लिया है। कही आर्थिक विषमता उसे अलग कर रही है तो कही परिस्थितियाँ उसे कुंठित कर रही है। सामाजिक जीवन में पारिवारिक संबंध एक दूसरे के साथ उलझते जा रहे हैं। "भारत को प्राय: 'संयुक्त परिवारों' का देश कहा जाता है। सामाजिक मानवविज्ञानी तथा समाजशास्त्रीय साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कम होता है। मूल तथा विस्तारित परिवार के बीच में भेद किया जाता है। विस्तारित परिवार की इकाइयों का ही उल्लेख सामान्य तथा संयुक्त परिवार के रूप में किया जाता है। मूल परिवार का अर्थ है एक विवाहित युगल और उनके बच्चे।"[9] भारत में खासकर गाँवों में लेकिन शहरों में परिवार छोटे हैं। शहरों में बच्चे को माँ-बाप के साथ छोटे से मकान में रहना पड़ता है। कुछ परिवारों में बच्चे अपने चाचा-चाची, माता-पिता के साथ रहते हैं। परन्तु इन सभी

परिवारों में माँ-बच्चे के बीच सबसे अधिक नजदीकी रिश्ता होता है। बच्चे के विकास में भी माँ की ही सबसे ज्यादा भूमिका रहती है। बच्चा पैदा होने के बाद से माँ के आंचल में रहते हुए वह सीखना शुरु कर देता है। दूसरी ओर माँ-पिता या दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा सुनायी गयी कहानियाँ उसका नैतिक, चारित्रिक विकास करने के साथ ही अन्दर मानवीय मूल्यों की नीव भी डालती है।

आधुनिक समय में परिवार की एकजुटता तथा उनके संबंधों की गुणवत्ता पर अनेक कारणों का प्रभाव पड़ा है, जैसे शिक्षा, अव्यवसाय, आर्थिक असमानताएँ तथा स्थानगत दूरी अधिक महत्पूर्ण कारण हैं। ये संबंधों पर अपना प्रभाव डाल रहे हैं और साथ ही उन्हें परिवर्तन की दिशा में धकेल रहे हैं। एक घर में रहने की संस्कृति, अकेली स्त्री की परिघटना, तथा अविवाहित मातृत्व का अभी भारत में बड़े पैमाने पर आगमन नहीं हुआ है। किन्तु कम से कम नगरीय परिवार तो रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजर ही रही है। समय के साथ-साथ होने वाले काफी महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद परिवार अब भी कुछ महत्वपूर्ण प्रकार्य कर रहा है। इसके माध्यम से सदस्यता का प्रतिस्थापन तथा समाज का भौतिक अनुरक्षण सुनिश्चित होता है। यह अस्तित्व की न्यूनतम जरूरतें जैसे पोषण, आश्रय, रोगी की देखभाल पूरा करता है। परिवार छोटों का समाजीकरण करता है। इसी के परिवेश के भीतर वे समाज के प्रतिमानों को ग्रहण करते हैं साथ ही व्यवहार के उपयुक्त रूपों के अनुरूप आचरण करना सीखते हैं। सबसे ऊपर यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक इकाई है। यह उत्पादन और उपयोग दोनों की एक इकाई है। नगरीय परिवार अब केवल उपयोग की इकाई बनने की ओर प्रवृत्त हो रहा है क्योंकि वह बाहर काम करने से प्राप्त आय पर निर्भर है लेकिन कुल मिलाकर भारत में परिवार अब भी उत्पादन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार सामाजिक संगठन के रूप में एक महत्वपूर्ण इकाई है और परिवार विवाह के परिणाम के रूप में अस्तित्व में आता है। यह विवाह के जरिए आगे भी बढ़ता है। इस प्रकार परिवार के संदर्भ में विवाह के महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। यह नातेदारी व्यवस्था को भी प्रभावित करता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में पारिवारिक संबंधों को दर्शाया गया है। उनकी कहानियों में चित्रित परिवारों का मेल है तो साथ ही परिवारों का विघटन भी है। उनकी कहानियों में पारम्परिक रिश्तों की जकड़न, पारिवारिक विघटन गहरी वेदना के साथ अभिव्यक्त होते हैं। पारिवारिक विघटन तो एक प्रकार से शिवमूर्ति की कहानियों का केन्द्रीय विचार है। वरिष्ट आलोचक वीरेन्द्र मोहन के शब्दों में –

"शिवमूर्ति की कहानियों में संयुक्त परिवार और संयुक्त परिवार के विघटन तथा उससे उत्पन्न कारकों की पहचान मिलती है। 'भरतनाट्यम', 'सिरी उपमा जोग' तथा 'केशर कस्तूरी' में पारिवारिक विघटन के कमजोर पक्ष को और अधिक दयनीय बना देता है। उन्होंने संयुक्त परिवार और विघटित परिवार में आर्थिक आधार और उससे उत्पन्न संबंधों को पहचाना है। शिवमूर्ति की प्राय: सभी कहानियों में यह केन्द्रीय विचार है।"[10] यह बात सही है कि शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में संयुक्त परिवार की समस्याओं को बखूबी प्रस्तुत किया है। 'केशर-कस्तूरी' इस कहानी संग्रह की अन्तिम कहानी है। कहानी की नायिका केशर है। जिसका बाल-विवाह हो चुका है। दलित समाज में प्रतिभा की कमी नहीं है, कमी केवल अवसरों की है। केशर एक ऐसी लड़की है जिसे अवसर मिले तो उसकी योग्यता कस्तूरी सुगन्ध की तरह चारों तरफ फैल जाएगी। परन्तु वहाँ गरीबी, बाल-विवाह के भँवर में फँसकर दारुण नियति को प्राप्त होती है। अपनी दीन हीन स्थिति के बावजूद उसमें आत्मसम्मान खूब है। बड़ा शान्त व करुण रोष प्रकट करती है केशर –

"मोछिया तोहार बप्पा 'हठे' न होई है

पगड़ी केहू न उतारी, जा - ई - ई

टुटही मंडिया या जिनगी बितउ बै,

नाही जाबै आन की दुआरी जी - ई - ई।"[11]

दलित समाज में पंचायत का हुक्म मानने वालों की प्रवृत्ति रही है। ये अपनी बेटियों को नरक में मरते दम तक तड़पते हुए देख सकते हैं किन्तु समाज के अन्धविश्वास और रीति-रिवाजों को नहीं तोड़ सकते। "शिवमूर्ति की कहानियों में अनुभव का सच भी इसीलिए जटिल है और ऐसा अनुभूत सत्य है जो जीवन-जगत की कल्पना पर नहीं बल्कि उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है। उनकी कहानी 'केशर-कस्तूरी अनमेल विवाह की समस्या की ओर इशारा करती है, पर वह केवल वहीं तक सीमित नहीं रहती बल्कि उसके माध्यम से गाँवो के बड़े परिवारों के भीतर निरन्तर गहराते संकट की झलक मिलती है।"[12]

शिवमूर्ति की इस कहानी में परिवारों के भीतर चलने वाली अनेक घटनाएँ हैं। 'केशर-कस्तूरी' में छोटी-मोटी पारिवारिक समस्या को दिखाया गया है जैसे बँटवारे की समस्या, विघटन की समस्या

आदि। केशर के जेठों की चालाकी से बँटवारे की स्थिति पनपती है, लेखक के संवाद में –"अलगौझा से पहले बड़े जेठ ने अपनी दोनों लड़कियों की शादी कर दी। मँझले ने गया-जगन्नाथ जी का दर्शन करके बिरादरी को इफराती भेज दिया। फिर इन तीनों के खर्च से हुए कर्ज को तीन-तिहाए बाँटकर अलग कर दिया। बड़े जेठ बीस साल से कानपुर में 'परमानेंट' नौकरी करते हैं। वहीं निजी मकान बना लिया है। लेकिन गाँव आए, कर्ज लेकर शादी की और हिस्से में कर्ज बाँट गए।"[13] शिवमूर्ति ने इस कहानी के माध्यम से बड़े परिवार में होने वाली घटनाओं को दिखाया है।

पारिवारिक जीवन में निरंतर होने वाली विघटन-संस्कृति का बखूबी समावेश 'केशर-कस्तूरी' में हुआ है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। संयुक्त परिवार व्यवस्था की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि इसमें व्यक्तिगत स्वार्थों के बजाय सबके हित-चेतना का भाव रहता था। परन्तु वर्तमान युग के औद्योगिक विकास विशेषकर नवऔपनिवेशिकवाद जैसे अनेक कारणों के बढ़ते प्रभाव से संयुक्त परिवार व्यवस्था में निहित सच्चाइयाँ धीरे-धीरे विनष्ट होती जा रही है, अपितु यह कहना अधिक सही होगा कि वह पूरी तरह समाप्त हो रही है। 'केशर-कस्तूरी' कहानी संग्रह की कहानियों में 'भरतनाट्यम', 'केशर-कस्तूरी', 'सिरी उपमा जोग' आदि में संयुक्त परिवार के विघटन की दुरावस्था देखने को मिलती है। पारिवारिक टूटन-संस्कृति का दृश्य और भी कारुणिक हो उठता है जब वृद्धावस्था में अपने ही संतानों से प्राप्त उपेक्षा भोग रहे वृद्धों की दयनीय कथा 'अकाल-दण्ड' की बोरे पर गठरी बनी सिकुड़ी पड़ी बूढी, 'तिरियाचरित्तर' में बेटे से उपेक्षित माँ-बाप, 'केशर कस्तूरी' की केशर पर सौंपी गयी बूढी सास आदि वृद्धावस्था में अपनी ही संतानों से उपेक्षित वृद्धजनों की प्रतिनिधि हैं। आज के पारिवारिक जीवन की सबसे बड़ी सांस्कृतिक समस्या है - प्रतिष्ठा का बचाव और उससे संबंधित आपसी संघर्ष। 'कसाईबाड़ा' में लीडरजी अपनी ही पत्नी के सामने प्रतिष्ठा का महत्वाकांक्षी होकर चिल्लाता है, "बिना पढ़ी-लिखी जनाना का साथ.....मैं फिर वार्निंग देता हूँ, लास्ट वार्निंग। पढ़ना-लिखना शुरू कर दो, वरना.....तेरे जैसी फूहड़ औरत को लेकर कोई एमेलेज फ्लैट में कैसे रह सकता है ?"[14] ठीक उसी प्रकार 'सिरी उपमा जोग' कहानी के अफसर पति अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए अपने आप को अनमैरिड बताता है और देहाती पत्नी को छोड़कर शहरी प्रेमिका के साथ शहर में घर बसाता है। इस कहानी में अफसर पति अपने प्रतिष्ठा के लिए अपने-परिवार को भी छोड़ देता है। शिवमूर्ति की कहानी 'भरतनाट्यम' में चर्चित पारिवारिक

विघटन संस्कृति में पिता-पुत्र, माता-पुत्र संबंधों आदि में निहित तनाव का कारण भी बड़े पैमाने पर प्रतिष्ठा का प्रश्न है। शिक्षित पुत्र ज्ञान के नाम पर माँ-बाप अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते थे। लेकिन उनकी महत्वाकांक्षा पूरी न होते देखकर वे ज्ञान से नाराज हो गये और यह पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण बन गया। लेखक के संवाद में देखें तो - "कभी-कभी तो रोना आ जाता है। अपनी सगी माँ सिर्फ इसलिए मौन साधकर बेटे को जला रही है, क्योंकि उसका बेटा, उसने पेट काटकर, एक-एक पैसा जोड़कर चौदह वर्ष तक पढ़ाया, बेकार बैठा हुआ है। आशा रही होगी कि उसका पैसा सूद के साथ वापस आएगा, लेकिन मूल भी डूबता देखकर वह असहिष्णु और आक्रामक हो उठी है। इसकी अभिव्यक्ति वह मेरे प्रति मौन व उपेक्षा प्रदर्शित करती रहती है।"[15] ऐसी ही छोटी-छोटी बातों से पारिवारिक विघटन होता है जो शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में अच्छी तरह से प्रस्तुत की है। परिवार के विघटन का एक और कारण है, संतान में पुत्र इच्छा से संबंधित भारतीय लिंग-विवेचना संस्कृति। जो 'भरतनाट्यम' का एक मुख्य विषय है। भारतीय सामाजिक संस्कृति की बड़ी विड़म्बना ही है कि लड़कियाँ आज भी हिकारत की नजर से देखी जाती है। इसलिए भारत में लिंगानुपात लगातार गिरता चला जा रहा है। इस कहानी में भी पत्नी को पुत्र प्राप्ति की कामना है और वे इस कामना को पूरी करने के लिए सारी हद पार कर लेती है और अपने ही जेठ के साथ यौन-सम्बन्ध बनाती है, और कहती है कि - "उनकी कोई गलती नहीं है। मैं ही उनका हाथ पकड़कर मंड़हे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिए।"[16] पुत्र प्राप्ति की कामना और उससे होने वाला पारिवारिक संघर्ष एवं विघटन को इस कहानी के माध्यम से शिवमूर्ति ने अच्छी तरह से दिखाया है। शिक्षा के आदर्श और आम जीवन के यथार्थ के बीच गहरा फासला है जो पारिवारिक विघटन का कारण बनता है। जिसे शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन के यथार्थ से जोड़कर देखा है। उनकी कहानियों में पारिवारिक विघटन को आर्थिक पक्ष के साथ जोड़कर देखा जा सकता है जो कि आज के समय का सबसे बड़ा सच है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी में लालू की अम्मा अपने पति से कहती है –"आप शादी क्यों नहीं कर लेते वहाँ किसी पढ़ी लिखी लड़की से ? मैं तो शहर में आपके साथ रहने लायक भी नहीं हूँ।"[17] लालू की अम्मा को लगता है कि वे एक अनपढ़ है और वह अपने पति के लायक नहीं है। पति कहाँ एक बड़े अधिकारी और वह एक अनपढ़ कहीं न कहीं लालू की अम्मा अपने पति की जरूरतों को समझते हुए उनके अलग परिवार की बात की है और वही होता भी है उसके पति एक शहरी पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह करता है फिर लालू की अम्मा का पूरा परिवार टूट जाता है। इस कहानी में

लालू की अम्मा अकेली पीड़ित नहीं है बल्कि लगभग हर कोई पीड़ित है। गाँव में अपनी पहली अनपढ़ पत्नी को छोड़कर शहर में जिलाधीश की बेटी से दूसरी शादी किए अफसर पति भी कहीं-न-कहीं अपने पहले परिवार के लिए दु:खी है। वे न दूसरी पत्नी को छोड़ सकता है और न ही पहली पत्नी से घर आए अपने ही बेटे लालू को अपना कह सकता है। पहले पत्नी और उसका बेटा लालू और बेटी कमला तो पीड़ित है ही दूसरी पत्नी भी पीड़ित है यह जानकर कि यह बेटा इन्हीं का है। पारिवारिक रिश्तों का यह ऐसा चक्रव्यूह है जिसमें हर कोई अभिमन्यु है। शिवमूर्ति की यह एक छोटी सी कहानी है और यह उनकी सबसे अच्छी कहानी माना जाता है। वर्गीय दृष्टि भी इस कहानी में बहुत स्पष्ट है क्योंकि जिलाधीश की बेटी लालू को देखते ही उसका खून पी जाना चाहती है। उपभोक्तावादी सभ्यता में परिवार, गाँव, समाज आदि पूरी तरह से टूट रहे हैं, बँट रहे हैं। शिवमूर्ति की कहानियों में यह चित्रण कुछ विशेष अर्थ रखता है। उनके यहाँ यह मूल्य के टूटने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संयुक्त परिवार को परिवार का एक प्रकार मात्र नहीं माना गया है। संयुक्त परिवार एक मूल्य है, अवधारणा है। उसके विघटन से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर कथाकार इशारा करता है तो उसकी सीमाओं को भी सूचित करता है। उन्होंने अपनी कहानियों में पारिवारिक विघटन से उत्पन्न दयनीय दशा का चित्रण किया है। पारस्परिक प्रेम, सौहार्द तथा सूझ-बुझ के अभाव से ऐक्य बधिक होता है। मानवीय गरिमा को चोट पहुँचाती है। पारिवारिक सम्बन्धों में गाँठ बढ़ती जाती है। 'भरतनाट्यम' का ज्ञान भयानक मानसिक यातनाओं का शिकार बनता है तो उसकी पत्नी पर भी मानसिक यातनाएँ जारी रहती है। उसकी किसी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है। सबसे दु:खद स्थिति ज्ञान की बेटियों की है। उन्हें जूठे ग्लास के फेन से तृप्त होना पड़ता है। यह इसलिए कि वे लड़की है। रुग्ण मानसिकता की शिकार होकर जीवन बिताना पड़ता है। पारिवारिक विघटन के साथ आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस कहानी में ज्ञान को इन सब का सामना करना पड़ता है।

शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया-चरित्तर' में ऐसे परिवार का वर्णन हुआ है जो एक दम से चौंका देने वाले हैं। यह परिवार विमली का है। जब वे विवाह के बाद गौना करके अपने घर चली जाती है तो अपने ही ससुर द्वारा उस का यौन शोषण होता है और फिर उसी को सजा भी होती है। इस कहानी की पारिवारिक व्यवस्था को देखें तो यह दु:खदायक तथा एकदम क्रूर, निर्दयी प्रकार की पारिवारिक स्थिति है। हिन्दी कहानी में ऐसी ठोस और जीवंत स्त्री पात्र कम ही रची गई है। स्त्री चरित्र के मामले

में यह अदभूत कहानी है। इसका अंत कुछ नाटकीय लग सकता है लेकिन यह हमारे समाज का यथार्थ है। विमली प्रेम और दांपत्य दोनों की गरिमा निभाना चाहती है अपनी परिवार को सुखी देखना चाहती है लेकिन समाज का नियम उसे ऐसा नहीं करने देता। पुरुष सत्ता और धर्म सत्ता यहाँ एक हो जाते हैं और फिर विमली के ससुर द्वारा जो क्रूर षड्यंत्र रचा जाता है वह दिल दहला देने वाला है। उपर से घर-परिवार सबने उसे छोड़ दिया जब कि उसकी कोई गलती नहीं थी। गलती थी तो उसके पिता समान ससुर की। इस कहानी में पारिवारिक संबंध कुछ अलग प्रकार की है, पिता समान ससुर अपने ही बहु को गलत नजर से देखता है यह परिवार के नाम पर एक प्रश्न चिन्ह है।

3. ग. ग्रामीण तथा नगरीय जीवन

भारत को ग्रामों का देश कहा जाता है तथापि यहाँ नगरीय केन्द्रों की भी प्राचीन परम्परा रही है। सिंधु घाटी की सभ्यता प्रकृति मूलत: नगरीय थी। विदेशी यात्रियों ने अनेक फलते-फूलते शहरों का उल्लेख किया है जो देश के विभिन्न भागों में स्थित थे। इनमें से कुछ नगर प्रशासनिक राजधानी थे, कुछ नगरों का धार्मिक महत्व था, कुछ अन्य व्यापार तथा वाणिज्य केन्द्र थे। इन नगरों तथा इनके पृष्ठ प्रदेशों में बसे गाँवों के बीच परस्पर क्रिया के सुनिश्चित संरूप थे। ये संपर्क अब कहीं अधिक विकसित हैं। प्रशासनिक, न्यायिक, विकासपरक तथा अन्य कारणों से ग्रामीण जनता को प्राचीन समय की तुलना में अब शहर ज्यादा आना पड़ता है। हर गाँव में अनेक जातियों के लोग रहते हैं। इन जातियों के बीच कुछ क्षेत्रों में अलग-अलग तरह के संबंध होते हैं। साथ ही उनके बीच पड़ोसी के संबंध तथा व्यक्तिगत तथा पारिवारिक मित्रताएँ एवं शत्रुताएँ भी होती हैं। गाँव के भीतर अंतर्जातीय तथा अंतर्व्यक्तिगत संबंधों के तीन पक्ष विशेष रूप से विचारणीय है। विशिष्ठ व्यवसायगत सेवा विनिमय के माध्यम से जातियों की परस्पर निर्भरता, जाति पंचायतों के अतिरिक्त ग्राम पंचायतों की कार्य प्रणाली तथा गांव की गुटबंदी की राजनीति।

लोग गाँवों तथा नगरों की विशिष्ट प्रकृति में अंतर करते हैं। दोनों के बारे में रूढ़ धारणाएँ हैं। ग्रामीणों को सीधा-सादा, सरल माना जाता है। माना जाता है कि शहर के लोग तेज होते हैं और भरोसेलायक नहीं होते अत: उन पर अविश्वास किया जाता है। ऐसी रूढ़ियों के बावजूद ग्रामीण और शहरी लोगों के बीच नियमित रूप से आर्थिक, आनुष्ठानिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आदान-प्रदान होता रहता है। जजमानी संबंधों तथा जाति पंचायतों के संदर्भ में छोटे कस्बों का संरूप काफी कुछ

गाँव जैसा ही होता है, जाति पंचायतें निस्संदेह शहरों में कमजोर होती हैं। बड़े शहरों में बस जाने वालों की स्थिति भिन्न होती है। वे न तो पूर्णत: विकसित जजमानी संबंध बना सकते हैं न जाति पंचायत। वे अपने क्षेत्र के लोगों का संगठन बनाने का प्रयास अवश्य करते हैं और एक क्लब की तरह समय-समय पर मिलते रहते हैं। वे महत्वपूर्ण क्षेत्रीय उत्सव भी साथ मिलकर मनाते हैं। निश्चय ही वे गाँव में अपने संबंधियों को नियमित रूप से पैसा भेजते हैं, वर्ष में एक बार गाँव जाते हैं तथा विवाहों और मृत्यु संबंधी अनुष्ठानों में भाग लेने के लिए भी गाँव जाते हैं। परन्तु समय पारिवारिक बंधनों पर अपना असर डालता है। अनेक जाति संगठन बनाये जाते हैं। इनमें से कुछ शहर केन्द्रित होते हैं और कुछ क्षेत्रीय होते हैं। वे आंतरिक सुधारों के मुद्दों जैसे विवाह और मृत्यु के अवसर पर होने वाले कर्मकांडों के सरलीकरण तथा जाति प्रतिमानों के अवांछित पर चर्चा करते हैं। ऐसे संगठन जहाँ मजबूत होते हैं वहाँ वे राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं तथा जाति उम्मीदवार अथवा किसी अन्य पसंदीदा उम्मीदवार के लिए वोट जुटाते हैं। बढ़ते ग्रामीण-शहरी संपर्कों के साथ दो भिन्न प्रतिमान समूह उभर रहे हैं। गाँव में लोग परंपरागत प्रतिमानों का पालन करते हैं जैसे कर्मकांडीय पवित्रता तथा अपवित्रता, सहभोज के नियम, अंतर्विवाह आदि। शहरी परिवेश में ये प्रतिमान काफी ढीले हो गये हैं। एक भरी बस में अपने बगल में बैठे व्यक्ति की जाति पहचान पाना कठिन है न ही किसी सार्वजनिक भोजस्थल पर कोई रसोइये अथवा भोजन परोसने वाले की जाति पूछ सकता है। नगरों की ऊर्जा केन्द्र की भूमिका को हमेशा मान्यता मिली है। नगर ज्ञान और उद्योग के केन्द्र रहे हैं।

शिवमूर्ति को गाँवों पर लिखने वाले कथाकारों में अग्रणी माना जाता है। गाँव और किसान के साथ उनका अनिवार्य संबंध अनेक प्रकारों से उनकी कहानियों में व्याख्यायित हुआ है। उनका जीवन अनुभवों का भंडार है। गाँव के जाने कितने चरित्र उनके लेखन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। जिस प्रकार वे कथा रस के साथ ठेठ देसी अंदाज में वे वृतांत साधते हैं, वह अदभुत है। वे ग्रामीण जीवन के कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में जिस ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण किया गया है, वह मूलत: अस्सी के दशक के बाद की है। शिवमूर्ति भी प्रेमचंद और रेणु के ही परम्परा के कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन को जानने का न केवल एक मुहाना है बल्कि तस्वीर भी है। यह तस्वीर पिछले पचास सालों की छवियाँ है। जहाँ पारिवारिक और सामाजिक विघटन के साथ-साथ वर्ग और जातिभेद के चलते उच्चवर्गीय जुल्मों को सहते निम्न वर्ग

की दास्ताँन भी है। गाँव का वातावरण सामूहिक जीवन की परम्परा रहा है। प्रेमचन्द ने जिन समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से दिखाया था वह गाँवों में आज भी किसी न किसी रूप में बनी हुई है। इन समस्याओं में चाहे कम उम्र में शादी करने की समस्या हो या गाँव की ऊँची जातियों द्वारा निचली जातियों का शोषण करने का मामला या उनकी बहन-बेटियों के साथ जबरदस्ती करने की बात। यही सारी बातें आज भी किसी न किसी रूप में ग्रामीण समाज में बनी हुई है। अन्तर यदि है तो बस है कि समाज के निम्न वर्ग के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता को लेकर है। शिवमूर्ति की कहानियों में भी यही सारी समस्याएँ हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी के केन्द्र में गाँव की लड़कियों को बेचने का सिलसिला चल रहा है यही इस कहानी का मुख्य केन्द्र है। इस कहानी में शनीचरी की बेटी सहित गाँव की बहुत से बेटियों को सामूहिक विवाह के नाम पर बेच दिया गया था। शनीचरी इसके खिलाफ गाँव के प्रधान के घर के बाहर अनशन करके बैठी है। वे प्रधान को देखने पर चीखते हुए कहती है कि –"मारे बिटिया वापस कर दे बेईमनवा, तोरे अंग-अंग से कोढ़ फूटी कै बदर-बदर चुई रे कोढ़िया... ।"[18] इस गाँव में उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों पर अत्याचार करते दिखाई देते हैं। साथ ही यह भी है कि किस प्रकार एक गाँव में पढ़े-लिखे लोग अनपढ़ हरिजन स्त्री का फायदा उठाते हैं। शिवमूर्ति की इस कहानी के गाँव के लोगों में प्रतिरोधात्मक सांस्कृतिक जागृति हो रही है, अन्याय के खिलाफ बोलने की हिम्मत बढ़ रही है। पर फिर भी गाँवों में जो सरकारी विकास मिलने चाहिए वे मिल नहीं पाते उससे उच्च पदों पर बैठे लोग निगल जाते हैं। शहर में देखें तो ऐसा नहीं होता सरकार से जनता को मिलने वाली सहायता मिल जाती है। गाँव में किसी भी स्त्री का शोषण कर लेते हैं पर शहर में ऐसा नहीं होता वहाँ पर पुलिस है, न्यायालय है उनकी सुरक्षा के लिए परन्तु यह सुविधा गाँवों के लोगों को नहीं मिलती। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में बहुत ही अच्छी तरह से ग्रामीण तथा नगरीय जीवन का विवरण किया है। आलोचक विजय शर्मा इस बात को संदर्भित करते हुए कहते हैं कि – "शिवमूर्ति गहरे सरोकार के रचनाकार हैं। उनके यहाँ शहर के चित्र भी हैं, मगर मुख्य रूप से वे गाँव के चितेरे हैं। भारतीय गाँव विसंगतियों का मूर्तमान रूप हैं और ये विसंगतियाँ शिवमूर्ति के यहाँ खुलकर उपस्थित हैं। हमारे गाँवों में चलने वाला जाति और वर्ण का नंगा नाच और उसके पीछे की साजिशों को शिवमूर्ति उजागर करते हैं। "[19] शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' में यह दिखाया गया है कि गाँव में अब भी इस तरह की स्त्रियाँ मिल जाएँगी जो अपने आप में समर्पण की प्रतिमूर्ति हैं। 'सिरी उपमा जोग' इसी तरह की एक स्त्री की संघर्ष और

बलिदान की गाथा है। ए.डी.एम साहब की पहली पत्नी लालू की अम्मा है जो गाँव से है और अनपढ़ है। उसमें संवेदना है दूसरों के दु:ख तथा जरुरत को समझती है। गाँव के लोगों में आज भी अच्छाई, शिष्टता एवं सुशीलता है इस बात को लेखक लालू की अम्मा के द्वारा कहलाते है कि - "मैं तो आपकी सीता हूँ। जब तक वनवास में रहना पड़ा, साथ रही लेकिन राजपाट मिल जाने के बाद तो सोने की सीता ही साथ में सोहेगी। लालू के बाबू सीता को तो आगे भी वनवास ही लिखा रहता हैं।"[20] और वहीं दूसरी पत्नी एक पढ़ी-लिखी स्त्री है, शहर के रहने वाली है पर संवेदना शून्य है। वह माँ होते हुए भी माँ नहीं है। ईर्ष्या और डाह की वृत्तियों से भरी पड़ी है। वे लालू को भी 'चुड़ैल की औलाद' कहती है और साथ ही धमकी देती है कि गेट के अन्दर भी लाए तो खून पी जाऊँगी। इस कहानी में दोनों पत्नियों में कोई समानता नहीं है। इनके पीछे यही है कि एक पत्नी गाँव के वातावरण से संबंधित है तो दूसरी पत्नी शहर से संबंधित है। गाँव का जीवन एक दम सीधा-साधा होता है, वे लोग किसी के लिए बुरा नहीं सोचते हालांकि अन्धविश्वास को मानते हैं परन्तु फिर भी वे लोग सूद से ज्यादा दूसरों के लिए सोचते हैं पर शहर में रहने वाले लोग ऐसे नहीं होते कथाकार ने 'सिरी उपमा जोग' कहानी में यही दिखाया है। इस कहानी में लालू कथाकार के लिए दस-ग्यारह वर्ष का लड़का ही नहीं है वह तो अपने आप में 'गाँव' का प्रतीक भी है। कहानी के अंत का यह वाक्य "चबूतरे पर गाँव नहीं है।"[21] इस वाक्य का अपना एक विशेष अर्थ है। वे अपने ही बेटे जो गाँव में पला-बढ़ा उसे गाँव मानते है न की अपना बेटा। यही ग्रामीण जीवन का सच है कि जो लोग शहर में नौकरी प्राप्त कर लेते हैं उसके बाद शहर की चकाचौंध में गाँव को तो भूल ही जाते हैं वे लोग यह भी नहीं सोचते कि गाँव ने ही उसे आज सब कुछ दिया है। इस कहानी के पात्र भी ए.डी.एम बन्ने के बाद गाँव के साथ-साथ अपने परिवार यहाँ तक कि अपने ही बेटे को भी भूल जाता है। इस कहानी में कहानीकार ने अच्छी तरह से ग्रामीण तथा शहरी जीवन का वर्णन किया है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हुए शिवमूर्ति यह टिप्पणी करना भी नहीं भूलते कि - "यही विघुत्धारा दूरदराज के शहरों को रोशनी से जगमगा रही होगी। करोड़ों गैलन पानी से मीलों लम्बे पार्कों और विहारों को तर करते रंगीन फव्वारे छुट रहे होंगे लेकिन यहाँ गाँवों के लिए इस शक्ति का कोई अर्थ नहीं है।" [22] शिवमूर्ति की कहानी 'केशर-कस्तूरी' की नायिका केशर है। केशर गाँव की लड़की है जो बचपन में अपने मौसा जी को वो पापा बुलाती है उनके साथ शहर में जाकर रहती है। केशर जब शहर में रहने लगती है तो वो शहर के खान-पान और रहन-सहन से अवगत होती है और वहाँ की सुख-सुविधाओं का उपभोग करती है। जो गाँव में नहीं

होता । इस कहानी में कहानीकार ने केशर के माध्यम से शहर और गाँव का अन्तर बताया है । आलोचक प्रियंका कुमारी सिंह इस बात को सिद्ध करते हुए कहती है कि - "पहले जब केशर ने शहर नहीं देखा था यहाँ के खान-पान और रहन-सहन से अवगत नहीं थी तो दूसरी बात थी लेकिन एक बार सुख-सुविधा की सारी चीजें देख-भोग लेने के बाद उस देहात में बेरोजगार पति के साथ दिन काटना पड़ेगा इतनी सुंदर बेटी को तो उसके मन पर क्या बीतेगी ? जिसने सुख देखा है, दु:ख उसके लिए कई गुना अधिक दु:खदायी होता है ।"[23] यहाँ पर आलोचक भी यही बात बताती है कि जो शहर में सुविधा मिली है वे गाँव में तो सम्भव ही नहीं । केशर-कस्तूरी कहानी में जिन ग्रामीण समस्याओं को उठाया गया है वे समस्याएँ हिन्दी कहानी में पहले से ही किसी न किसी रूप में उठायी जाती रही हैं लेकिन शिवमूर्ति के हाथों ये विविध संदर्भो से जुड़ कर, उनकी खास शिल्प-शैली और गहरी संवेदना पैदा करने की दुर्लभ क्षमता का संस्पर्श पाकर अधिक मुखर हो जाती हैं और अपनी समस्त भयावहता के साथ उजागर हो जाती है । शिवमूर्ति की कला की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे जिस बात को पाठक तक पहुँचाना चाहते हैं उसे सीधे-सीधे कहने के बजाय उसकी सारी डिटेल्स रख देते हैं, जैसे कि - "केशर पहली बार गाँव से बाहर निकली थी । शहर की चीजें आँखें फाड़कर देखती । चलते हुए टेबुलफैन के सामने खड़ी हो, मुँह खोलकर हवा को पेट में भरने और जीभ को ठंडा करने का प्रयास करते हुए आनन्दित होती थी । बिजली से पानी गरम हो जाना, बिना धुआँ-धक्कड़ के गैस के चूल्हे पर खाना पक जाना, सीटी मारने, भाप उगलनेवाला कुकर, बिना मेहनत के टोंटी घुमाते ही बाल्टी भर देनेवाला नल । सब उसे अजगुत-अजगुत लगते ।"[24] इस बात से स्पष्ट पता चलता है कि गाँव के जीवन से शहर का जीवन भिन्न होता है । शहरों में अनेक प्रकार की सुविधा मिलती है पर गाँवों में वे सब नहीं मिलती है । गाँवों में बहुत प्रकार के अभाव होते है । छोटे-छोटे से लेकर बड़े-बड़े तक का अभाव यह बात कहानीकार अपने शब्दों में कहते हैं कि - "स्कूल खुले तो यूनिफार्म पहनकर स्कूल जाते बच्चों को देखती रह जाती है केशर । गाँव के अभाव, नियंत्रण और आर्थिक संयम में पला बचपन शहर की स्वतंत्रता और सहज उपलब्धि देखकर आह्लादित था ।"[25] यही से पता चलता है कि ग्रामीण जीवन तथा शहरी जीवन में क्या-क्या अन्तर होता हैं । इतना ही नहीं संविधान से दिया गया जो 'समानता का अधिकार' है, परन्तु यह भी सच है कि गाँव तक वह अधिकार अभी पहुँच नहीं पाया है । गाँव के लोग पिछड़ा हुआ होते हैं पर जो भी हो गाँव के लोगों में भाई-चारा तो शहरों के मामले ज्यादा ही होता है । शिवमूर्ति की एक और कहानी है 'भरतनाट्यम'

जिसमें उन्होंने इस बात को ज्ञान के माध्यम से कहा है कि - "मैंने पहली बार महसूस किया कि गाँव को मैं कितना प्यार करता हूँ। गाँव मेरे रोम-रोम में बस गया है, यहाँ गाँव छोड़ने के बाद जाना। मुझे दफ्तर में भी गाँव के ताल, भींटें, बाग, उसर-बंजर, दकुलाही, बँसवारी और रूसहनी की याद सताती, जैसे जंगली तोता पिंजड़े में बन्द हो गया हो।"[26] इससे हम कह सकते हैं कि शहर में जो भी सुविधा है पर गाँव के तुलना में वे कुछ भी नहीं है। लोग ग्रामीण जीवन जीते है तो उसे कूपमंडूक कहते हैं। पर इस कहानी में कहानीकार शहरों में रहने वाले को भी कूपमुंडूक कहे हैं। कहानीकार के शब्दों में शहरी लोगों के बारे में कहा गया है कि - "जैसे-जैसे मैं अपने शहरी सहयोगियों से घुलता-मिलता गया, मुझे उनसे विरक्ति होती गई। सचिवालय मुझे ऐसा चिड़ियाघर नजर आता, जहाँ एक ही किस्म की चिड़ियाँ कैद की गई हों, जिन्हें चेहरे से पहचानना सम्भव न हो। मैं इन लोगों को चेहरे से नहीं, बल्कि इनके कपड़ों से पहचानता था। लोग गाँव के लोगों को कूपमुंडूक कहते हैं, पर मुझे तो अपने दफ्तर में भी कम कूपमुंडूक नजर नहीं आए।"[27] इस कहानी के माध्यम से कहानीकार बताते हैं कि गाँव के लोगों की तुलना में शहर के लोग भी बाहरी दुनिया से उतना परिचित नहीं है वे शहरी लोगों को भी कूपमुंडूक ही मानते हैं। शहर में जो लोग नौकरी करते हैं उन लोगों की दुनिया अत्यंत सीमित है, दफ्तर और परिवार, बीच में कुछ भी नहीं। गाँव तथा शहर का चित्रण करते हुए शिवमूर्ति ने शहर के लोगों पर व्यंग करते हुए कहा है कि - "बहुतों को तो यह भी नहीं पता होता कि चने का पेड़ बड़ा होता है या अरहर का।"[28] शिवमूर्ति ने अपने शब्दों के माध्यम से इस कहानी में शहर तथा गाँवों का बारीकी के साथ वर्णन किया है।

शिवमूर्ति ग्रामीण कहानीकार है पर फिर भी उन्होने शहरों का भी वर्णन अपने कहानियों में किया है। गाँव तो उनके कहानियों का मुख्य बिन्दु है ही पर शहर भी उनसे नहीं छूटा है। उन्होंने जितनी बारीकी से ग्रामीण जीवन का वर्णन किया है, उतने ही बारीकी से शहरों का भी किया है। पर यह भी सत्य है कि उनकी कहानियों में शहरों का वर्णन गाँवों की तुलना में कम हुआ है परन्तु जो हुआ है वे काबिले तारीफ है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानी 'सिरी उपमा जोग' में ए.डी.एम. के माध्यम से कहलाते हैं कि - "शहर की आबोहवा तथा साथी अधिकारियों के घर-परिवार का वातावरण हीन भावना पैदा करने लगा था। जिन्दगी के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा था।"[29] इतने छोटे से एक वाक्य ने शहरों का वर्णन सरलता से किया है। कितनी सरल भाषा में बहुत कुछ कह गए। शिवमूर्ति की यह

कहानी गाँव और शहर के बढ़ते अन्तराल की भी कहानी है। गाँव में रहना या गाँव से संबंध होना जैसे असभ्य होना है, असभ्य कहलाना है। गाँव से शहर पहुँचे व्यक्ति के लिए गाँव एक कूड़ा से अधिक कुछ नहीं रह जाता, जिससे वह जल्द से जल्द मुक्त हो जाना चाहता है। वह भूल जाता है कि आज वह जो कुछ भी है, गाँव और गाँव के संबंधों के कारण ही है। किन्तु सभ्य और प्रसिद्धि बनने की धुन, सभ्यता की चमक-दमक उसे गाँव की तरफ मुड़कर देखने नहीं देती। जिस गाँव में वो पैदा हुआ, बड़ा हुआ, जिन्दगी का महत्वपूर्ण समय जहाँ गुजारा वही उसे एक ऐसी उबाऊ चीज लगती है, जिससे वह पीछा छुड़ा लेना चाहता है। इस कहानी के ए.डी.एम साहब भी यही करना चाहते हैं और करते भी हैं ।

वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति में इस तरह की कहानी की कोई कल्पना नहीं है बल्कि कटु सत्य है। आलोचक विभा नायक इस बात को बताते हुए कहती है कि - "अच्छी नौकरी की तलाश में गाँव से शहर की ओर पलायन इस तरह की स्थितियों को भी पैदा किया है। गाँव के लड़के को शहर में अच्छा पद और रुतबा मिलने के बाद अपना ही गाँव अखरने लगता है और गाँव उसका ठीक वैसे ही अतीत बन जाता है जैसे कहानी के साहब का है।"[30] शिवमूर्ति कहानी के माध्यम से बदलते हुए समाज की मनोदशा को दिखा रहे हैं। यह वही ग्रामीण समाज है जो कभी सादगी और आदर्शो का प्रतीक था आज वह इस रूप में पहुँच गया है। शिवमूर्ति ग्रामीण समाज में हो रहे इस बदलाव को बखूबी दिखाते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में जिन गाँवों के चित्र खींचे हैं, वे भारत के ही गाँव है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी गाँवों के लोग उसी अभाव में जी रहे है। 'तिरिया चरित्तर' की विमली गाँव से बाहर, ईट के भट्ठे पर काम करती है, 'अकाल दंड' की सुरजी भी मजदूरी करने के लिए गाँव से कोसों दूर जाती है। जबकि शहर बिजली की दुधिया रोशनी में चमक रहे हैं। शिवमूर्ति कुछ लाइनों में गाँव तथा शहर का कुछ अंतर व्यक्त करते हैं - "यही विद्युतधारा दूर-दराज के शहरों को रोशनी से जगमगा रही होगी। करोड़ों गैलन पानी से मीलों लम्बे पार्कों और विहारों को तर करते रंगीन फव्वारें छूट रहे होंगे लेकिन यहाँ गाँवों के लिए इस शक्ति का कोई अर्थ नहीं है।"[31] गाँव वालों के सामने अकाल जैसी समस्या है जिसे वे जूझ रहे हैं। जबकि शहर भोगवाद की दुनिया में जी रही हैं। यही हमारे देश की विड़ंबना है। ग्रामीण बनाम शहरी जीवन के गुणों एवं दोषों पर जो बहसें और वादविवाद अतीत में चलते रहे हैं, वे वर्तमान में भी जारी हैं और संभवत: भविष्य में भी चलते रहेंगे। नगर ज्ञान और उद्योग के केन्द्र रहे हैं। उन्होंने राजनीतिक नेतृत्व दिया है और जनमत बनाया है। वे जीवन

शैलियाँ निर्धारित करते हैं जिनका बाद में ग्रामीण जनता अनुकरण करती है। शिवमूर्ति ने इन्ही बातों को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा है, जैसे सरकारी नौकरियों में हो रहे घोटालों, भ्रष्टाचारों को भी कहानियों के केन्द्र में रखा है। ये सारी की सारी बुराइयाँ मुख्यत: शहरों से गाँव तक अनुकरण के माध्यम से पहुँची है। उनकी कहानी 'भरतनाट्यम' का ज्ञान सरकारी नौकरी से इसलिए निकाल दिया जाता है क्योंकि वह अपने से बड़े साहब की चापलूसी नहीं कर पाता, स्कूल शिक्षक की नौकरी से भी इसलिए हाथ धोना पड़ता है क्योंकि वह अपने उन सिद्धांतों को नहीं तोड़ना चाहता जो उसने स्कूल में सीखे थे। शिवमूर्ति इस कहानी के माध्यम से सरकारी नौकरी तथा शहरों में से गाँव तक फैले भ्रष्टाचार को बताते हैं।

शिवमूर्ति के कथा साहित्य में गाँव एक विचार या अवधारणा के बतौर व्यवहृत नहीं हुआ है बल्कि एक जिन्दा अहसास के रूप में आया है। उन्होंने गाँव के बाहरी आवरण को नहीं भीतरी मर्म को पकड़ा है। इस कारण से उनके गाँव सजीव लगते हैं। एक ऐसे दौर में जब शहर लगातार हमारे गाँवों को चर रहे हैं, खुद गाँवों में रोज अबाध गति से शहरों का उगना जारी है। ऐसे समय में शिवमूर्ति अपनी कहानियों में गाँवों को जिन्दगी बख्शने के लिए कटिबद्ध हैं। आज भारत सरकार की आर्थिक नीतियों पर गौर करें तो क्या यह अलग से बताने की जरूरत नहीं है कि वह शहरों के पक्ष में है या गाँवों के पक्ष में। शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' कहानी को यदि चरित्र और व्यक्तिगत संबंधों से इतर बदलते भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य की पृष्ठभूमि में देखें तो आधुनिक भारत के विकासशील चरित्र की एक अंतहीन कथा सामने आती है।

शिवमूर्ति की कहानियाँ जब गाँव के यथार्थ को और शहर, बाजार और तथाकथित विकास को जोड़ती हैं तो उसके संधि स्थल पर स्वयं शिवमूर्ति खड़े दिखाई देते हैं। गाँव के दुरूह जीवन से लेकर सुख-सुविधाओं से भरे शहरी जीवन और छोटी-मोटी नौकरी से लेकर राज्य सरकार की अफसरी तक के सफर के अनुभवों का उनके पास अकूत भंडार है। आज हम उनके बारे में कह सकते हैं कि उन्होंने सिर्फ भारत के गाँव ही नहीं देखे बल्कि दुनिया देखी है। पर वह दुनिया देख कर जब गाँव लौटते हैं तो वह स्वयं को गाँव से दूर नहीं पाते। वह स्वयं को उसी हवा-पानी-मिटटी का अंश ही पाते हैं। तभी वहाँ की हवा में धुली उदासी और नमी को वे अपने कहानियों में उसी के रूप और रंग के साथ जैसे का तैसे उतार पाते हैं।

3. घ. स्त्री- पुरुष सम्बन्ध

भारतीय समाज में भूमिका निर्धारण के संदर्भ में पुरुष के कार्य और स्त्रियों के कार्य में भेद किया गया है। गृहस्थी के प्रबंध का काम निरपवाद रूप से स्त्री के क्षेत्र में आता है। "यदि वे घरेलू कामकाज में हाथ बटाने के लिए कोई सेवक नहीं रख सकती हैं। कुछ ही लोग घरेलू सेवक रख पाते हैं, तो स्त्रियों को घर के सारे कामकाज खुद ही करने पड़ते हैं जैसे पानी भरना, खाना पकाना, घर की सफाई, अपने और घर के पुरुषों और बच्चों के कपड़े धोना तथा बच्चों की देखभाल।"[32] पुरुष लोग यह कार्य तब करते हैं जब पत्नी घर पर नहीं होती है या अस्वस्थ हो तथा उसका काम संभालने वाली कोई अन्य स्त्री घर में न हो। यह धारणा इतनी गहरी जमी हुई है कि व्यवसायों में कार्यरत तथा पूर्वकालिक सेवारत स्त्रियों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे इसके अतिरिक्त गृहस्थी के काम-काज भी देखती रहें। बहुत सी स्त्रियाँ जब अपने घरेलू दायित्व नहीं पूरा कर पाती तो उन्हें अपराध बोध न भी हो तो एक अपर्याप्तता तो महसूस होती ही है। दूसरी ओर देखें तो पुरुषों से घर के बाहर की दुनिया के कामकाज देखने की अपेक्षा की जाती है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे परिवार का भरण-पोषण करें तथा उसके असंतोष तथा संघर्ष की स्थिति में पंच के रूप में काम करें। पुरुषों का वर्चस्व रहता हैं किन्तु स्त्रियों के भी अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप काम करवाने के अपने तरीके होते हैं। निम्नतर जातियों और वर्गों में पारिवारिक समूह के आर्थिक व्यवसायों में उनका महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। वे हल न भी संभालें लेकिन कृषि में अनेक प्रकार से अपना योगदान देती है। इस प्रकार पारिवारिक अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

स्त्री-पुरुष संबंधों तथा स्त्रियों के प्रति जारी अन्याय ने समाज सुधारकों का ध्यान आकृष्ट किया है। अनेक समाज सुधारकों स्त्रियों के हित समर्थन में आगे आये हैं। "मध्यकाल के कुछ संत कवियों ने स्त्रियों के प्रति अधिक मानवीय तथा न्यायपूर्ण व्यवहार करने का उपदेश दिया। सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा कुछ मुस्लिम सुधार आंदोलन की कार्यसूची में स्त्री के अधिकारों और स्थिति को सुधारने की बात भी शामिल थी। वे सामान्यत: सामाजिक तथा क़ानूनी असमानताओं के विरुद्व थे तथा उन्होंने बाल विवाह, विधवाओं के प्रति व्यवहार, स्त्री को संपत्ति के अधिकार से वंचित रखे जाने तथा स्त्री शिक्षा की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया।"[33] भारतीय संविधान में एक अंतर्विरोध के कारण स्त्री-पुरुष भेदभाव के अनेक

रूप सामने आये हैं। संविधान सुनिश्चित करता है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। वह धर्म, जाति, लिंग तथा जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव का निषेध करता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों को बारीकी से दिखाया गया है। स्त्री किस प्रकार अपने परिवार, अपने पति से शोषित है तथा पुरुष किस प्रकार की सोच रखता है अपने परिवार तथा अपने पत्नी के प्रति। शिवमूर्ति की चुनिन्दा कहानियों में से एक है 'सिरी उपमा जोग' यह छोटी किन्तु बिल्कुल संतुलित कहानी है। असलियत में यह आज के जीवन की विड़ंबनाओं की सर्वेक्षण करती हुई यह एक अलग तरह के शिल्प वाली कहानी है जिसका शिकार अंतत: स्त्री ही होती है। प्रख्यात आलोचक विभा नायक इस बात को संबोधित करते हुए कहती है कि "बड़ा और शहराती आदमी बन जाने के बाद पुरुष को अपने ही परिवार में अपनी ही पत्नी में ग्राम्यता की गंध आने लगती है और एक दिन वो सब कुछ छोड़ अपनी पत्नी का त्याग; समर्पण और प्रेम यहाँ तक कि अपने मासूम बच्चों तक को भुलाकर शहर में अपनी एक दुनिया बसा लेता है।"[34] इस कहानी के ए.डी.एम अपनी पहली पत्नी को भूल चुका है। उस पत्नी से उसका दस-ग्यारह साल का लड़का लालू है और सत्रह वर्ष की बेटी कमला है। उनकी दूसरी पत्नी ममता जिला न्यायाधीश की लड़की है। परन्तु न्यायाधीश की बेटी को न्याय से कोई सरोकार नहीं है और वे खुद एक स्त्री होकर लालू की अम्मा पर अन्याय करती है। लेखक की भाषा में देखें तो - "उस चुड़ैल की औलाद तो नहीं, जिसे आप गाँव का राज-पाट दे आए हैं ? ऐसा हुआ तो खबरदार, जो उसे गेट के अन्दर भी लाए, खून पी जाऊँगी।"[35] इस कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह एक पुरुष अपने फ़र्ज को भूल जाता है ग्रामीण से नव शहरी बनकर और बनने की प्रक्रिया में जुटे समाज की असलियत समक्ष रखता है कि किस प्रकार आज का युवा पुरुष सफल होने के लिए अपनों की भावनाओं से खेलता है। उसका अपना परिवार उसकी पत्नी जो जी तोड़ मेहनत कर उसे बड़ा आदमी बनाने, उसके सपनों को पूरा करने में मदद करती है पर वे उन सभी बातों को भूल जाता है और वो स्त्री फिर भी अपने फर्ज के लिए सब कुछ करती रहती है और सहती रहती है। लालू की अम्मा अनपढ़ थी पर फिर भी आशा और आत्मविश्वास से भरी हुई एक पत्नी थी जो अपने पति को हर समय सहयोग करती है। वो एक अनपढ़ पत्नी होते हुए भी अपने फ़र्ज को निभाती है मुश्किल समय में खुद अपनी चिंता न कर अपने गहने बेच कर प्रतियोगिता परीक्षा के शुल्क और पुस्तकों की व्यवस्था करती है।

इतना ही नहीं खेती-बाड़ी का सारा काम अपने कन्धों पर ले कर उन्हें गृहस्थी की तमाम जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया था जिससे कि वे निश्चिंत होकर परीक्षा की तैयारी कर सके। स्त्री अपने फ़र्ज के लिए अपने आप को समय भी नहीं दे पाती इस कहानी में भी लालू की अम्मा घर गृहस्थी के अथाह काम और बीमार ससुर की सेवा से इतना समय नहीं निकाल पाती है, जिससे पति की इच्छानुसार परिवर्तन ला पाती। जहाँ स्त्री अपने परिवार के लिए सब कुछ करती दिखायी देती है और पुरुष वर्ग केवल अपना स्वार्थ देखता है और उसे ही वरीयता देता है, इस क्रम में बिल्कुल करीबी रिश्तों को भी तिलांजलि देने से वह नहीं चूकता। ए.डी.एम. की दूसरी पत्नी ममता की बेटी अपने पिता से लालू के बारे में कहती है –"बदमाश लड़का बरामदे तक घुस आया था। मैंने अपनी मोटर फेंककर मारा, उसका माथा कट गया।"[36] तब भी पिता बेटी को कुछ नहीं कहता। इस कहानी में बाप की संवेदनहीनता, पिता-पुत्र संबंधादि पर विचार के साथ ही वर्गीय मानस और दृष्टी पर भी ध्यान देना आवश्यक है। लालू और उसकी अम्मा ने बहुत कुछ सहा है गाँव में चाचा के द्वारा सताये जाते हैं पर फिर भी उस पति पर कोई असर नहीं है वही ग्रामीण पत्नी की भूमिका के द्वारा पति का निर्माण हुआ था पर आज उसी पत्नी की हालत, आर्थिक स्तर बुरी है। आलोचक रविभूषण इस बात को संबोधित करते हुए कहते हैं कि "पति के निर्माण में ग्रामीण पत्नी की भूमिका है। ग्रामीण पत्नी का स्वभाव और संस्कार पुराने हैं ऐसे संस्कारों के साथ अब जिया नहीं जा सकता। इस पत्नी ने पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने का सुझाव पति को दिया था। दूसरी पत्नी के प्रति इसके मन में कोई बैर भाव नहीं है।"[37] इस कहानी के माध्यम से लेखक कहना चाहता है कि एक स्त्री अपने पति के सुख के लिए क्या नहीं करती और एक पुरुष अपने स्वार्थ के लिए किस हद तक जा सकता है। शिवमूर्ति पुरुषों की मानसिकता को कटघरे में खड़ा करते हैं। लालू के पिता को अपने बच्चों से कोई हमदर्दी नहीं है। ऐसा स्वार्थी, धूर्त इन्सान अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए कुछ भी कर सकता है। पुरुष का सुख, स्त्री का दुर्भाग्य। सभी जातियों, वर्गों में एक समान है। पढ़े लिखे दलितों में भी अवसरवाद है।

शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' की नायिका विमली की बचपन में हुए विवाह के कारण वह घुट-घुटकर जिन्दगी जीने को मजबूर है। विमली ने अपने माँ-बाप का पेट भरने के लिए दिन-दिन भर भट्टे पर ईटों की ढुलाई करती थी वही उसका भाई अपने माँ-बाप और बहन को छोड़कर अपने

पत्नी के साथ चला गया। पूरे परिवार का जिम्मा अब उसकी बहन के ऊपर था। अपने घर में भी विमली एक अच्छी बेटी की तरह अपना फ़र्ज पूरी करती है तथा एक अच्छी पत्नी का भी फ़र्ज निभाती है। जिसके साथ विमली का विवाह हुआ है उसे बहुत लम्बे समय से या यह कहें कि विवाह के बाद से ही उसकी मुलाकात नहीं हुई है फिर भी वो उसी पति के इन्तजार में रहती है। आलोचक अनुराग मिश्र इस बात कि पुष्टि करते हुए कहते हैं - "विमली अपनी इज्जत-आबरू बचाते हुए अपने पति सीताराम की छवि की कल्पना करते हुए अपने ससुर के साथ ससुराल चली जाती है, जबकि विमली का पति कलकत्ता में कमाने गया हुआ था, यह बात विमली और उसके माँ-बाप सबको पता था।"[38] इस कहानी के पुरुष पात्र को लेखक ने खलनायक के रूप में दिखाया है, विमली का भाई जो अपने फ़र्ज को निभा नहीं पाता तो उसके पति सीताराम भी अपने देहाती पत्नी विमली को भूलकर कलकत्ता से कभी नहीं आता और विमली के ससुर तो एक गिरगिट की तरह रंग बदल कर अपने ही बहू के इज्जत से खेलता है। लेखक के शब्दों में - "शुरू-शुरू में तो नई पतोहू जैसा शरम-लिहाज था। रीं-रीं करके रोना हम बिटिया बराबर अही। आप बाप बराबर। रो-रोकर पैर छान लेती थी दोनों हाथों से। लगता था अब ढीली पड़ी कि तब। लेकिन बाद में तो बिल्ली जैसी खूँखार।"[39] इस कहानी में सभी पुरुष खलनायक के रूप में ही हैं। कहानी का शीर्षक ही तिरिया-चरित्तर है परन्तु वास्तव में पुरुष चरित्तर की कहानी है असल में यहाँ उस पुरुष समाज का चरित्तर उघाड़ती है जो हर सम्भव स्त्री को "येन केन प्रकारेण" भोग लेना चाहता है। यहाँ तिरिया का चरित्तर तो उत्तम, प्रतिरोधी, जागरुक व संवेदनशील तथा जिम्मेदारियों से भरा है। किन्तु उससे जुड़ा पुरुष उसे भोगने भर की लालसा पाले है। वास्तव में पुरुष का चरित्र बेहद घिनौना, अमर्यादित व नंगा है। शिवमूर्ति ने विलक्षण वातावरण रचा है। अंतिम दम तक विमली प्रतिरोध करती है परन्तु नियति वही थी कि हजारों पुरुष ने मिलकर एक स्त्री को लूट लिया है। आलोचक बलराज पाण्डेय के शब्दों में "यह पुरुष चरित्तर शुरू होता है विमली के ससुराल जाने के बाद। घर में उसका आदमी तो है नहीं। पुरुष के नाम पर यदि कोई है तो उसका ससुर बिसराम-शिव का भक्त, गाँव की मठिया और उसके पुजारी का सेवक, बिना डिग्री-डिप्लोमा के पशु चिकित्सक के रूप में पुरे गाँव-जवार में मशहूर। पहले वह उसकी तारीफ कर अपने प्रभाव में लाना चाहता है। उसे खुश करने के लिए कई प्रकार की पैंतरेबाजी करता है और जब सामान्य रूप से अपनी वासना का शिकार बनाने में असफल रहता है तब भगवान के चरणामृत और प्रसाद में अफीम मिलाकर खिलाया और बेहोश कर उसे अपनी हवस का शिकार बनाने में सफल हो जाता है। अब विमली के सामने उसकी

जिन्दगी की सबसे विकट समस्या है-ससुराल रूपी नरक से मुक्ति की। कहानी के अंतिम भाग में पुरुष वर्चस्व खूँखार शिकारी की तरह एक स्त्री के सामने प्रकट होता है।"[40] इस तरह से इस कहानी में पुरुष वर्चस्व वाले समाज के यथार्थ की कहानी है, जहाँ श्रम के बल पर अपनी जिन्दगी सँवारने की ख्वाहिश रखने वाली स्त्री के उत्साह को, उसके सपनों को तोड़ दिया जाता है और उसे बेबस लाचार बना दिया जाता है।

शिवमूर्ति की कहानी 'केशर-कस्तूरी' की केन्द्रीय पात्र केशर है। केशर एक खुशमिजाज और कामकाजी लड़की है, जिसके पास तमाम तरह के अचूक देहाती नुस्खे हैं और जिनकी बदौलत वह जल्दी ही कॉलोनी के लोगों का दिल जीत लेती है। फिर उसकी गौने की तारीख तय हो जाती है। उसकी शादी दर्जा आठ पास करते ही हाईस्कूल में पढ़ने वाले एक लड़के से कर देते हैं। केशर और उसके पति के संबंध अच्छा रहता है। पर जब उसकी पति एक दुर्घटना की वजह से लचार हो जाते हैं और नौकरी छुट जाती है तब से उसका पति एकदम चिडचिड़ा हो जाता है पर फिर भी केशर कुछ नहीं कहती चुप-चाप अपना फ़र्ज निभाती रहती है। केशर को अपने ससुराल में दिन रात मेहनत करनी पड़ती है तब जाकर कहीं उसके परिवार की गुजर-बसर होती है। सिलाई-बुनाई करके कुछ पैसे भी कमाती है। समाज इस तरह की स्त्रियों को गलत नजरों से देखता है। केशर पर जेठ से अवैध संबंध का आरोप लगता है। जब कोई स्त्री आत्मनिर्भर होकर अपना काम करती है, अपनी देख-भाल खुद करती है, किसी के सामने हाथ नहीं फैलाती है तब पुरुष समाज उस पर इस तरह के आरोप लगा कर यह सिद्ध करना चाहता है कि पुरुष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है। पर इस कहानी में केशर बात को उलटा साबित करती है। उसका पति बीमार है वे कुछ कमा नहीं पाता पर केशर अपनी पति के फ़र्ज को अपना फ़र्ज मान कर निभाती है। उसके कन्धों पर बूढ़ी सास और बूढ़े बैल के परवरिश की जिम्मेदारियाँ है जिसे छोड़ कर वह कहीं भी नहीं जाना चाहती। केशर ससुराल में बैठ कर अपने फ़र्ज को निभाने के लिए तथा अपने परिवार की रोजी-रोटी के लिए सिलाई-कढ़ाई का काम करती है ताकि अपने परिवार को कुछ आर्थिक सुविधा दे सके पर वहाँ भी पितृसत्तात्मक समाज उस पर आरोप लगाते हैं। आलोचक प्रियंका कुमारी सिंह इस बात को संबोधित करते हुए कहती है कि "अपनी रोजी-रोटी का जुगाड़ करने की तरफ स्त्री का छोटा सा कदम भी पितृसत्ता के अंगरक्षकों को असुरक्षा में डाल देता है क्योंकि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री पितृसत्ता की जड़ पर कुठाराघात करती है इसीलिए

अपनी गिरफ्त बनाये रखने के लिए वह तुरंत सक्रिय हो जाता है। स्त्री के चरित्र पर उँगली उठा कर उसके मनोबल को तोड़ने की कोशिश उनका सबसे पुराना औजार है।"[41] इस कहानी में लेखक ने दिखाया है कि एक स्त्री की मेहनत पर पुरुष किस तरह से जलते हैं, लेखक के शब्दों में - "जेठानी की आँखे फूटती हैं। जेठ अक्सर लड़ता है। झूठ-मुठ कलंक लगाता है कि सिलाई तो बहाना है, दुनिया भर के लुच्चे-शोहदे, छोटे-बड़ों के लौंडे-लपाड़े अँधेश होती ही दुआर पर मँडराने लगते हैं। इसका आदमी तो भट्ठे पर जाकर आँख की ओट हो जाता है। मैं खानदान की पगड़ी उछलते नहीं देख सकता। किस-किससे रार मोल लेता फिरूँ। बहुत-बहुत सिलाई-कढ़ाई वाली देखा है। धन्धा करना है तो बाजार में जाकर दुकान खोले।"[42] शिवमूर्ति की कहानी 'भरतनाटयम' का प्रमुख पात्र ज्ञान है जो पढ़ा-लिखा है, बेरोजगार है, शादी-शुदा है और तीन बेटियों का बाप है। घर में इस बात का खामियाजा ज्ञान के साथ-साथ उसकी पत्नी और उसके बच्चों तक को झेलना पड़ता है। पत्नी का जुर्म है कि उसने लड़की ही लड़की को जन्म दिया है। इस कहानी में स्त्री-पुरुष के भेदभाव को दिखाया गया है। बच्चों में भी भेदभाव है जेठ के दो लड़के है और ज्ञान के तीन बेटियाँ, उन बेटियों को घर में निम्न प्रकार से देखा जाता है। परन्तु घर के बड़े लोग उन दो लड़कों को प्यार करते हैं और सभी प्रकार की सुविधा तथा खान-पान प्रदान करते हैं। पर ज्ञान और उसकी पत्नी का संबंध अच्छा है एक दूसरे से प्यार करते हैं। जब ज्ञान को घर में हर कोई सुनाता है तो उसे लगता है अगर उसके साथ उसकी पत्नी हो तो काफी है। पत्नी ज्ञान का साथ देती है चाहे वे स्वार्थ के लिए ही सही। परन्तु जब ज्ञान को पता चलता है कि उसकी पत्नी का उसके बड़े भाई के साथ यौन संबंध हुआ है तब भी ज्ञान इस बात को गम्भीरता से नहीं लेता। उस वक्त भी उसके मन में अपने पत्नी के लिए वही प्यार है और वे उसे खोना नहीं चाहता। शिवमूर्ति के शब्दों में - "मैं भयभीत हुआ था तो सिर्फ इस बात से कि इन दिनों जिस हताशा और निपट एकाकीपन की अँधेरी गुफा में फँसा हूँ, वहाँ पत्नी ही एकमात्र ऐसा आलम्ब है, जिसके आँचल में मुहँ छिपा लेने पर घड़ी-दो घाड़ी सुकून मिल जाता है। यह आलम्ब भी छुट गया तो झेल नहीं पाऊँगा पैर उखड़ जाएँगे और मैं डूब जाऊँगा।"[43] वे अपनी पत्नी से प्यार करता है पर उसकी पत्नी तो बेटा पाने की इच्छा में अंधी बनी हुई है और खलील दर्जी के साथ कलकत्ता भाग जाती है। शिवमूर्ति की कहानी संग्रह 'केशर-कस्तूरी' की पहली कहानी है 'कसाईबाड़ा'। इस कहानी के प्रमुख पात्र के रूप में सनीचरी है। प्रधान, लीडर एवं दरोगा ये तीन मुख्य पात्र के रूप में है। इस कहानी में स्त्री-पुरुष संबंध को काम मात्र में दिखाया गया है। प्रमुख पात्र सनीचरी का तो किसी पुरुष के साथ

संबंध नहीं दिखाया गया है। दरोगा एक भ्रष्टाचारी है, जो लोगों से पैसा माँगता है, लोगों को धमकाता है और अपने पद का गलत फायदा उठाता है। जिसमें उसकी पत्नी भी उसको सहायत करती है। जब भी दरोगा हारते हुए नजर आता है तो उसकी पत्नी आकर मामले को संभाल लेती है। जब दरोगा से लीडर ऊँची आवाज में बात कर रहा होता है तब अपने पति से दरोगाइन चाय देती हुए कहती है - "का हल्ला मचाए हो जी ? दरवज्जे पर आए मेहमान से कोऊ ऐसन बोलत है ? आप भइयाजी 'चाह' पियो।"[44] परन्तु ठीक लीडर इसके विपरीत है और उसके पत्नी के संबंध में जब दरोगाइन को यह पता चलता है कि उसके पति ने सनीचरी का खेत धोखे से अपने नाम लिखा लिया है तो वह दरोगाइन की तरह अपने पति का साथ नहीं देती बल्कि उसका विरोध करती है और कहती है कि - "तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूँगी इस गाँव में।"[45] ठीक उसी प्रकार की सोच रखने वाली स्त्री है परधानिन। वे भी अपने पति के खिलाफ है क्योंकि उसे पता है कि उसका पति गलत है और साथ ही लीडर भी गलत है। परधानिन यहाँ तक कहती है कि इस गाँव में जब तक उसके पति प्रधान और लीडर हैं। इनके रहते गाँव में कभी भी खुशी शांति नहीं हो सकती। परधानिन बड़बड़ाती हुई अपने पति से कहती है कि - "ई गाँव लंका है। इहाँ लंकादहन होवेगा। रावन तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन। तोहरे दूनो के चलते गाँव का सत्यानास होवेगा। होई रहा है। बहिन-बिटिया बेंचो। हमहूँ का बेचि लेव। रुपया बटोरो। साथ लै जायेब, लेकिन अब हम एहि घरे मा ना रहब। आपन बेटवा लइके भीखकौरा माँगब, मुला....।"[46] शिवमूर्ति की इस कहानी में स्त्री-पुरुष संबंधों के विरोध के रूप में दिखाया गया है। परधानिन और लीडराइन दोनों ही अपने-अपने पति के कुकर्म के खिलाफ है। इस कहानी में कोई भी पति-पत्नी एक दूसरे के साथ सुखी नहीं हैं फिर चाहे वे परधान-परधानिन हो या फिर लीडर-लीडराइन हो। इस कहानी में स्त्री-पुरुष के संबंध को यथार्थ रूप में दिखाया गया है। हर स्त्री अपने पति का साथ देती है पर जब उसका पति बुरा काम करता है तो उस बुरे काम में साथ नहीं देती बल्कि विरोध करती है। इस कहानी में भी यही सब है। शिवमूर्ति ने इस कहानी में अच्छी तरह से स्त्री-पुरुष संबंधों का वर्णन किया है।

शिवमूर्ति की कहानी 'अकाल-दंड' की प्रमुख पात्र सुरजी है। इस कहानी में स्त्री-पुरुष संबंधों को उतना नहीं दिखाया गया है। सुरजी एक ग्रामीण दलित स्त्री है जिस का पति एक साल पहले ही उसे छोड़कर कही चला गया है अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए। तब से सुरजी को अपनी

और अपनी सास की जिन्दगी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। शिवमूर्ति ने इस कहानी के माध्यम से ग्रामीण स्त्री के दलित जीवन को समग्रता से रेखांकित किया है। आलोचक डॉ. सुश्री शरद सिंह इस बात को साबित करते हुए कहती हैं कि - "चाहे ग्रामीण अंचल की स्त्री हो या शहरी अंचल की, वह अपने परिवार को हर तरह का सुख देने के लिए तत्पर रहती है। देश में लाखों स्त्रियाँ मजदूरी करके अपनी परिवार का आर्थिक संबल बनी हुई हैं। वे खदान में काम करती हैं, ईट पत्थर ढ़ोती हैं, गिट्टी फोड़ती है और तपती चिलचिलाती धूप में मेहनत करती हुई अपना पसीना बहाती है।"[47] इस कहानी में सुरजी भी अपनी परिवार के लिए मजदूरी करती है। स्त्री हमेशा से दबी हुई रहती है और अपने फ़र्ज को पूरा करती है। स्त्रियाँ कभी भी अपने फ़र्ज से नहीं भागती चाहे जो भी हो अपने कर्तव्य को निभाती है। 'तिरिया-चरित्तर' कहानी में नायिका विमली का विवाह बचपन में ही दूसरे गाँव के बिसराम के लड़के से कर दिया गया था। विमली के मन में किसी को पा लेने की आकुलता है परन्तु मस्तिष्क उसे स्मरण कराता रहता है कि उसका ब्याह उससे बहुत दूर कलकत्ता में उसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा। विमली के विवाह को हुए कई वर्ष बीत गए किन्तु उसका गौना कराने अर्थात् उसे विदा कर ले जाने के लिए न तो उसका पति आया और न ही उसका ससुर। किन्तु विमली का स्त्री-मन अपने 'ब्याह' के प्रति समर्पित हो चुका था। अब उसे किसी और पुरुष से कोई मतलब नहीं था। एक दिन बिल्लर अवसर पा कर विमली के साथ छेड़खानी भी करता है जिसके उत्तर में विमली उसके हाथ को दांतों से काट कर स्वयं को बचाती है। बिल्लर ताना मारता हुआ कहता है कि डरेवर बाबू की देह महकती है और मेरी देह गंधाती है। अर्थात् यदि पुरुष किसी स्त्री को चाहता है तो वह उससे यही इच्छा रखता है कि स्त्री भी उसे चाहे, पसन्द करे, स्त्री की अपनी पसन्द कोई मायने न रखती हो। स्त्रियों को सौतिया-डाह के लिए सदियों से लांछित किया जाता है परन्तु पुरुषों में सौ गुना अधिक सौतिया डाह होता है। स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी सौतन के साथ निर्वाह करे और वह करती भी रही किन्तु पुरुषों ने अपने सौत को सहन नहीं किया है। यही कारण है कि तिरिया चरित्तर में विमली डरेवर के प्रति आकर्षित दिखाई देती है तो बिल्लर उम्मुक्त भाव से उसे ताना मारता है। नि: सन्देह, बिल्लर की भी अपनी एक आकांक्षा है। विमली को पत्नी के रूप में पाने की आकांक्षा परन्तु विमली पति के रूप में अपने ब्याह के अतिरिक्त और किसी के बारे में सोचना ही नहीं चाहती है और उसका पति है कि विवाह कर के भूल गया है उसे तो अपने पत्नी का नाम तक भी पता है कि नहीं। वो कलकत्ता जा कर वही बस गया। अपने गाँव, पत्नी घर को भूल कर परन्तु विमली उसी के सपने देख रही है।

शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों को विभिन्न प्रकार से दिखाया है। परन्तु हर जगह स्त्री को ही लाचार, विवशता की अवस्था में दिखाया गया है चाहे वो कसाईबाड़ा की सनीचरी हो, तिरिया-चरित्तर की विमली हो या सिरी उपमा जोग की पत्नी हो हर जगह स्त्री का ही शोषण हुआ है। हर कहानी में पुरुष स्त्री से कम लाचार है वे अपना निर्णय खुद लेता है, कहीं-न-कहीं पुरुष प्रधान समाज का चित्रण है साथ ही उनके कहानियों में और व्यंग भी है इस प्रकार के समाज को लेकर। शिवमूर्ति की 'भारतनाट्यम' कहानी में स्त्री-पुरुष संबंधों को अलग ही प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर कहानी का नायक ज्ञान को स्त्री की जगह पर लाया गया है और उसकी पत्नी को पुरुष की तरह प्रस्तुत किया है। ज्ञान एक स्वाभिमानी व्यक्ति है इसीलिए वो अपनी पत्नी की इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता, बदले में उसकी पत्नी उससे छोड़ कर चली जाती है तब वे अपना आपा खो देता है और भरतनाट्यम करने लगता है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंध को बहुत बारीकी से व्यक्त किया है। उनकी हर एक कहानी में स्त्री-पुरुष संबंध अलग-अलग प्रकार के हैं। गाँव में जितने लोग हैं उतनी ही सोच भी है, शिवमूर्ति ने उन सभी प्रकार की सोच वाले स्त्री-पुरुष संबंधों को अपनी कहानियों में वर्णित किया है।

इस प्रकार शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ तथा अन्तर्विरोध अपने नग्न यथार्थ रूप में मौजूद है। जहाँ जाति की गहरी जड़े मानव के संबंधों को तार-तार करती नजर आती हैं। जिन्हे शिवमूर्ति यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने अपनी कहानियों में संयुक्त परिवार तथा स्त्री-पुरुष संबंधों की भी पड़ताल बड़े यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत की है। उनका कहानी संग्रह 'केशर-कस्तूरी' इन रूपों को बखूबी चित्रित करता है।

संदर्भ :

1. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 24.
2. वही, पृ. सं. 34.
3. वही, पृ. सं. 42.
4. संवेद-73-75, सं. किशन कालिया, फरवरी-अप्रैल 2014, पृ. सं. 110.
5. अपेक्षा, सं. रमेश यादव, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. 59.
6. संवेद-73-75, सं. किशन कालिया, फरवरी-अप्रैल 2014, पृ. सं. 113.

7. मंच, सं. मयंक खरे, जनवरी-मार्च 2011, पृ. सं. 30.
8. लमही, सं. विजय राय, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ. सं. 206.
9. भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, पृ. सं. 60.
10. Htt:/lamhipatrisa.blogsbot.com.oct.dec2012shivmurti.Blogspot:n/2011/10/blog.post-21.html.
11. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 140.
12. शाताब्दी का प्रतिपक्ष, वैभव सिंह, पृ. सं. 150.
13. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 130.
14. वही, पृ. सं. 18.
15. वही, पृ. सं. 62.
16. वही, पृ. सं. 77.
17. वही, पृ. सं. 57.
18. वही, पृ. सं. 8.
19. इंडिया इनसाइड, सं. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिकी 2016, पृ. सं. 87.
20. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 57.
21. वही, पृ. सं. 59.
22. वही, पृ. सं. 29.
23. इंडिया इनसाइड, सं. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिकी 2016, पृ. सं. 53.
24. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 133.
25. वही, पृ. सं. 133.
26. वही, पृ. सं. 72.
27. वही, पृ. सं. 72.
28. वही, पृ. सं. 72.
29. वही, पृ. सं. 56.
30. संवेद-73-75,सं. किशन कालजयी, फरवरी-अप्रैल 2014, पृ. सं. 102.
31. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 29.

32. भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, पृ. सं. 101.

33. वही, पृ. सं. 103.

34. संवेद-73-75, सं. किशन कालजयी, फरवरी-अप्रैल, 2014, पृ. सं. 99.

35. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 59.

36. वही, पृ. सं. 59.

37. मंच, जनवरी-मार्च, 2011, पृ. सं. 44.

38. संवेद, 73-75 फरवरी-अप्रैल, 2014, पृ. सं. 106.

39. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 105.

40. इंडिया इनसाइड, सं. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिकी 2016, पृ. सं. 11-12.

41. वही, पृ. सं. 52-53.

42. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 138.

43. वही, पृ. सं. 77.

44. वही, पृ. सं. 14.

45. वही, पृ. सं. 23.

46. वही, पृ. सं. 21.

47. लमही, सं. विजय राय, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ. सं. 81.

चतुर्थ अध्याय

शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज का वैशिष्ट्य

4. क. जाति

जाति को वर्ण के रूप में भी जाना जाता है जिसे जन्म के आधार पर पहचान के रूप में समझा जा सकता है। ये वो पदवी है जो किसी को भी बिना पूछे दे दी जाती है। ये विरासत में मिली व्यवस्था है। इस प्रकार एक बच्चा जन्म के साथ ही अपने पिता की जाति को ग्रहण करता है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, मुख्य रूप से चार प्रकार के वर्णों की व्यवस्था है जो हिन्दू समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बाँटती है ।जाति की परिभाषा इस प्रकार है- जाति उसे कहते हैं जो नित्य है और अपनी तरह की समस्त वस्तुओं में सामान्य संबंध से विद्यमान है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार जाति की परिभाषा है - जाति वह है जो आकृति के द्वारा पहचानी जाए, सब लिंगों के साथ न बदल जाए। इन परिभाषाओं और शब्द व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि जाति शब्द का प्रयोग प्राचीन समय में विभिन्न मानव जातियों के लिये नहीं होता था। वास्तव में जाति मनुष्यों के अंतर्विवाही समूह या समूहों का योग है। जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता अर्जित न होकर जन्मना प्राप्त होती है, जिसके सदस्य समान या मिलते-जुलते पैतृक धंधा करते हैं और जिसकी विभिन्न शाखाएँ समाज के अन्य समूहों की अपेक्षा एक-दूसरे से अधिक निकटता का अनुभव करती है। अंग्रेजी में जाति का रूपांतर 'caste' है। 'caste' शब्द कि उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'castas' शब्द से हुई है जिसका अर्थ शुद्ध (pure) होता हैं। उसकी जगह पर पुर्तगालियों ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को अपनी भाषा में व्यक्त करने के लिए 'casta' शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ प्रजाति, मत तथा भेद होता है।

कुछ विद्वानों ने जाति को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है जो निम्नलिखित है:-

कूली (C.H Cooley) के शब्दों में - "जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होता है, तो हम उसे जाति कहते हैं।"[1]

जे.एच.हट्टन (J.H.Hutton) का कहना है कि "जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत एक समाज अनेक आत्म-केन्द्रित एवं एक-दूसरे से पूर्णतः पृथक इकाइयों(जातियों) में विभाजित

रहता है । इन इकाइयों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध ऊँच-नीच के आधार पर सांस्कारिक रूप से निर्धारित होते हैं ।"[2]

ब्लंट (E.A.H.Blunt) के अनुसार - "जाति एक अंतर्विवाही समूहों का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता आनुवंशिक होती है, जो सामाजिक सहावस के क्षेत्र में अपने सदस्यों पर कुछ प्रतिबंध लगाता है, इसके सदस्य या तो एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय को करते हैं अथवा किसी सामान्य आधार पर अपनी उत्पत्ति का दावा करतें हैं और इस प्रकार एक समरूप के रूप में मान्य होते हैं ।"[3]

जाति-प्रथा हिन्दू समाज की एक प्रमुख विशेषता है । प्राचीन समय पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता हैं कि इस प्रथा का लोगों के सामाजिक, आर्थिक जीवन पर विशेष प्रभाव रहा है । परम्परागत रूप में देखें तो जातियाँ स्वायत्त सामाजिक इकाइयाँ हैं जिन के अपने ही आचार और नियम हैं । जो अनिवार्यतः बृहत्तर समाज की आचारसंहिता के अधीन नहीं है । इस रूप में सब जातियों की नैतिकता और सामाजिक जीवन न तो परस्पर एक रस है और न पूर्णतः समन्वित । फिर भी भारतीय जातिपरक समाज का समन्वित तथा सुगठित सामुदायिक जीवन है, जिसमें विविधताओं तथा विभिन्नताओं को सामाजिक मान्यता प्राप्त है । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा कुछ वैश्य जातियों को छोड़कर प्रायः प्रत्येक जाति की नियमित तथा आचारों का उल्लंघन करने पर उन्हें दण्डित किया जाता है । क्षत्रिय तथा ब्राह्मण जातियाँ भी जातीय जनमत के दबाव से और यदा-कदा जातीय बंधुओं की तदार्थ पंचायत द्वारा उल्लंघनकर्ताओं को अनुशासित और दण्डित करता है । उच्च जातियों का यह अनुशासन राज्यतंत्र द्वारा भी होता रहा है ।

भारतीय समाज में वैदिक काल से ही जातियाँ एक-दूसरे की तुलना में ऊँची या नीची हैं । एक ओर सबसे ऊपर धार्मिक रूप से पवित्र अथवा सर्वोच्च मानी जाने वाली ब्राह्मण जातियाँ हैं तो दूसरी तरफ सबसे नीचे अन्त्यज श्रेणी की अपवित्र और अछूत कही जाने वाली जातियाँ हैं । इनके बीच अन्य सभी जातियाँ हैं जो सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से उच्च, मध्यम और निम्न श्रेणी में रखी जा सकती है । हिन्दू धर्मशास्त्रों ने पूरे समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त किया है । जातियों की सामाजिक मर्यादा का अनुमान करने में इससे सुविधा होती है । किन्तु अनेक जातियों की वर्णगत स्थिति अनिश्चित है । भारतीय जाति व्यवस्था में कुछ जातियाँ उच्च,

पवित्र, शुद्ध और सुविधा प्राप्त है और कुछ निकृष्ट, अशुद्ध, अस्पृश्य और असुविधा प्राप्त हैं। शिवमूर्ति ने इन्हीं अशुद्ध, अस्पृश्य और असुविधा प्राप्त जातियों की वेदना को अपने कहानियों का हिस्सा बनाया है। उनकी कहानियों में उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन के बहाने सम्पूर्ण भारतीय ग्राम-जीवन की मुकम्मल तस्वीर प्रस्तुथोती है। इनमें पिछले पैंतालीस-पचास वर्षों के भारतीय गाँवों की बदरंग तस्वीर आँकी गई है। यहाँ पारिवारिक तथा सामाजिक विघटन है तो सवर्णों का दलितों पर अत्याचार और दमन है। आजाद भारत के गाँव वाले खास करके दलित-पीड़ित वर्ग के लोग अपनी आज़ादी के लिए तरस रहे हैं। विकास की योजनाओं के बहाने उन्हें गरीब से दरिद्र बनाकर छोड़ दिया गया। पीढ़ियों से दमित और शोषित वर्ग को और भी दमन तथा शोषण के चक्रव्यूह में समाप्त हो जाना पड़ता है। सामाजिक, आर्थिक स्तर पर शोषित होना पड़ा। निचले तबके की स्त्रियाँ यौन-शोषण का शिकार बनी हैं। शिवमूर्ति ने गाँव के शूल, धूल और फूल को उकेर कर उसे अपनी कहानियों में यथार्थ रूप से अंकित किया है। गाँवों में जात-पात के नाम पर छुआ-छूत होता है तथा उनका शोषण होता है। दलितों की बहन-बेटियों की इज्जत के साथ खेला जाता है। सिर्फ इसलिए कि वह दलित हैं। शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' और 'अकाल-दण्ड' में भी कुछ ऐसा ही होता है। शहर, गाँवों का शोषण करते हैं और गाँव, दलितों का। बाबा साहब अम्बेडकर ने भी कहा है कि दलितों को गाँव छोड़ देना चाहिए। गाँवों में विकास संभव नहीं है। शहर में छुआछूत है पर गाँवों कि तुलना में कम।

'कसाईबाड़ा' शिवमूर्ति कि एक चर्चित कहानी है। कहानी के नाम से ही स्पष्ट है कि जिस तरह कसाई अपने स्वार्थ के लिए बेजुबान जानवरों को मार देता है, ठीक उसी तरह गाँव के प्रधान ने आदर्श विवाह के नाम पर सामूहिक इंटरकास्ट मैरिज करवाई है। जिसमें हर एक कन्या पक्ष हरिजन है। इस सामूहिक विवाह करवाने के पीछे प्रधान कि बहुत बड़ी चाल है। एक तरह से भोले-भाले गाँव वालों के सामने संत बने रहना और अपनी प्रधानी का परचम लहराना। जबकि इसका दूसरा पक्ष भी काफी दर्दनाक है। जिन लड़कियों की शादी की जाती हैं, उन्हें शादी के नाम पर देह व्यापार मिलता है। इस झूठी शादी के कारण गरीब हरिजन लड़कियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ किया जाता है। लेखक की भाषा में - "काकी, अपना परधान कसाई है। इसने पैसा लेकर हम सबको बेच दिया है। शादी की बात धोखा थी। हम सबको पेशा करना पड़ता है, रूपमती को भी अमीरों के घर सोने भेजा जाता है। आज मैं किसी तरह से निकल भागी। पीछे बदमाश लग गए थे।"[4] कोई सोच भी नहीं सकता कि इस

सामूहिक विवाह के पीछे इतनी दर्दनाक कहानी होगी। लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि पूरे गाँव में एक 'कसाईबाड़ा' चल रहा है। चाहे वो प्रधान हो, लीडर हो या दरोगा। सभी कसाई हैं। छोटी सी घटना को आधार बनाकर लेखक ने एक बड़े रहस्य का उद्घाटन किया है। कहानी में और भी ऐसी बातें हैं जैसे दलितों के खिलाफ षड्यंत्र, देह-व्यापार, उच्च पदों पर रहने वाले लोगों का आतंक, भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि। 'कसाईबाड़ा' पूरे देश में चल रहा है। वंचितों से उनके संसाधनों को हड़पा जा रहा है। दलितों का प्रयोग जानवरों की तरह किया जा रहा है। यहाँ दलित स्त्री का बहुस्तरीय शोषण हो रहा है। शिवमूर्ति की कहानी 'अकाल-दंड' में निम्न जाति के मजदूरों को मेट और ठेकेदार मिलकर ठगते हैं तथा मजदूरी भी ऊँची जाति को ही मिलती है। कहानीकार की भाषा में - "मेट और ठीकेदार जिसे चाहें रखें जिसे चाहें वापस भेज दें। मजदूरी देने के नाम पर भी दो-अंखी। ऊँची जाति वालों का नाम रजिस्टर में दर्ज करा लिया जाता है लेकिन वे कोई काम नहीं करते। ठूँठ पेड़ों की छाँह में आकर बैठ भर जाते हैं। और शाम को आधी मजदूरी मिल जाती है। काहे भाई ? शुरू-शुरू में बहुत कहा-सुनी हुई लेकिन कोई सुनवाई नहीं। बोलनेवाला अगले दिन काम से बाहर हों।"[5] शिवमूर्ति कि कहानियों में निम्न जातियों का संघर्ष है चाहे वह निम्न जाति कि स्त्री हो या वो निम्न जाति के पुरुष शिवमूर्ति की यह विशेषता है कि वे परिस्थितियों के सामने घुटने टेकते दिखाई नहीं देते बल्कि उनसे निपटने या दो-दो हाथ करने को तैयार रहते हैं। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि वे एक वर्गवादी लेखक हैं। पर इससे इंकार भी नहीं किया जा सकता है कि वर्ग चेतना और स्वाभिमान, मानव अस्मिता और गरिमा को वह सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। न्याय-अन्याय की लड़ाई को समूचे ऐतिहासिक विवेक के साथ अंजाम तक ले जाते हैं। उनके सर्जक के स्वभाव में किसी जाति-विशेष के प्रति कोई घृणा नहीं है पर उनके लेखन में जिस मानवीय गरिमा कि माँग है वह उन्हें अन्यों से अलग करती है और विशिष्टता सौंपती है। उनकी एक और कहानी 'तिरिया चरित्तर' है जिसका प्रमुख पात्र विमली है। इस कहानी में भी उन्होंने दलित समाज में हो रहे संस्कृति को दिखाया है कि किस तरह आज भी भारत में दलित जातियों में एक बालक के खेलने-पढ़ने के उम्र में ही शादी करवा दी जाती है। कहानी की प्रमुख पात्र विमली भी बाल-विवाह से नहीं बचती उसकी भी छोटी सी उम्र में ही गौना हो चुका है। जहाँ विमली को अपने दूल्हे की शक्ल तक नहीं पता ऐसी अवस्था में उसकी विवाह हुई थी। यही हाल निम्न जातियों की बेटियों की होती है क्योंकि उनके माता-पिता को लगता है कि बेटियों को बाल्यावस्था में ही विवाह कर देंगे तो उनका भविष्य अच्छा होगा। पर यहाँ विमली के भविष्य में कुछ

और ही होता है। विमली के बाल-विवाह की बात कथाकार ने इस प्रकार से वर्णित किया है - "उसे अपने दूल्हे की सूरत भी याद नहीं होगी। बचपन की शादी ! बच्चों का खेल जैसी।"[6]

शिवमूर्ति की कहानियों में जाति व्यवस्था के साथ दलित अस्मिता भी जुड़ी हुई है। उनकी कहानियों का मुख्य केन्द्र स्त्री, दलित स्त्री तथा दलितों की पीड़ा की कहानी है। कथाकार विवेक मिश्र की भाषा में - "शिवमूर्ति की कहानियाँ दलित अस्मिता के बारे में कहते ही नहीं, उसे सिद्ध भी करते हैं। शब्द दर शब्द, पंक्ति, कहानी डर कहानी वह निरंतर दलित और वंचित वर्ग कि अस्मिता का साहित्य रचते रहे हैं। शिवमूर्ति ने कम लिखा थोड़े में ही बहुत लिखा है। जरुरत है उसमें गुंथे हुए सूत्रों को बिलगाने की, उन्हें समझने की। वह अपनी बिल्कुछ अलग तरह की कहानियों की दुनिया के पक्कड़ और बिना पगड़ी के सरदार हैं।"[7] जाति में राजनीति के कारण 'निम्नतर' जातियों पर भाँति-भाँति के अत्याचार हो रहे हैं। अपनी दशा सुधारने के लिए उन्हें अपनी चुनावी ताकत का इस्तेमाल करने से रोका जा रहा है। कुछ क्षेत्रों में जाति का वर्चस्व कमजोर हुआ है परन्तु दूसरे तरफ में इसने खुद को और ताकतवर और दुर्भेद्य बना लिया है। भारतीय समाज, अर्थशास्त्र तथा राजनीति ने निम्नकृत कमजोर तथा असुरक्षितों के हित में केवल जबान हिलाई है लेकिन वे उनकी समस्याओं के निदान का कोई सार्थक, व्यावहारिक हल ढूंढ़ पाने में असफल रहे हैं। इसका स्पष्ट दृष्टिगोचर परिणाम असंतोष तथा प्रतिरोध दोनों का औचित्य समझा जा सकता है। परम्परा की अपनी उपयोगिता है परन्तु उसके प्रति सम्मान को शोषण, असमानता तथा अन्याय को जारी रखने का बहाना नहीं बनाया जा सकता। जाति के चलन में बदलाव आया है परन्तु वह धीमी तथा बहुत कम है। कानून ने एक हाथ से जो दिया है अस्पृश्यता तथा बंधुआ मजदूरी का उन्मूलन, शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में मुआवजे के रूप में आरक्षण, विवाह में जीवन साथी चुनने की आजादी उसे सतर्कता में ढीलेपन तथा अप्रभावी अमल कि कृपा की जाती है तो दूसरे हाथ से छीन लिया जाता है।

शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है। इसमें एक साहसी परन्तु हर तरफ से लाचार स्त्री की दारुण पीड़ा की कहानी है। लोकतंत्र की सफलता की कसौटी यह मानी जाती है की लोकतंत्र देश के सबसे कमजोर वर्ग के लिए क्या कर पा रहे हैं ? पर इसके उलट गावों में उच्चवर्गीय समाजों की सफलता इस पर टिकी होती है कि वह कमजोर वर्ग का किस सीमा तक दमन कर पा रहा है। इस कहानी कि नायिका विमली अपने पैरों पर खड़ा होना तो

जानती है पर वह उसके उत्पीड़न के लिए घात लगाकर बैठे पुरुषों के चक्रव्यू को भेदना नहीं जानती। उसकी इज्जत लूटी जाती है पर फिर भी अपराधी तो वही ठहरती है। पंच के सामने पूरे गाँव के लोग किस तरीके से एक मजबूर निर्दोष दलित स्त्री होने के बावजूद भी उसे पंच तथा उच्चवर्गीय समाज मिलकर सजा देते हैं। निम्न जातियों पर जो सालों से हो रहा है और होता रहेगा उसे शिवमूर्ति ने इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट किया है। शिवमूर्ति के शब्दों में - "गाँव के नाक कटानेवाली गाँव की इज्जत में दाग लगानेवाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। अगर आगे थाना-पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग चंदा करके झेलेंगे लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जायेगा।"[8] विमली निर्दोष थी फिर भी उसे सजा दी जाती है, उसकी बात सुनने वाला कोई भी नहीं था, शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से भारतीय समाज में हो रहे जाति व्यवस्था को बखूबी से प्रस्तुत किया है।

शिवमूर्ति की कहानियों पर ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन - "शिवमूर्ति हिंदी कथा साहित्य में एक ऐसा नाम है जिसकी अपनी एक अलग पहचान ही नहीं बल्कि जो सामाजिक जीवन के गंभीर सरोकारों और संवेदनाओं की एक विशिष्ट निर्मित के चिन्तक भी हैं। शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ और अंतर्विरोध नंगा यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति पातें है। जहाँ जाति व्यवस्था की गहरी जड़ें मानवीय संबंधों को छिन्न-भिन्न करती दिखाई देती है। जहाँ स्त्री और दलित को लगातार गहन यातना और विवशता में जीना पड़ता है। शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन की जटिलताओं और विषमताओं को अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त कथाकार है।"[9]

4. ख. स्त्री

माँ, बहन, अर्धांगिनी, बेटी और न जाने ऐसे कितने ही रूप को धारण करने वाली वो मूरत कलयुग में स्त्री के नाम से जानी जाती है। स्त्री प्राचीन काल से ही इस धरती पर कई सारे अवतार लेकर जन्म लेती रही है। स्त्री कभी एक माँ के रूप में अपने बच्चे को दूध पिलाती है तो कभी एक बहन बनकर अपने भाई की कलाई पर रक्षा सूत्र बांधती है, कभी एक पुरुष का आधा अंग बनकर उसकी अर्धांगिनी कहलाती है तो कभी एक बेटी बनकर अपने पिता का नाम रोशन करती है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही स्त्री की स्थिति बहुत ही दयनीय रही है। कुछ पवित्र ग्रंथों में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर उन्हें अत्यंत ऊँचा स्थान दिया गया है। मातृदेवी को दुर्गा, काली, चंडी या अन्य कई नामों और रूपों में उसे शक्ति का प्रतिनिधि माना जाता है। वह मन में भय और श्रद्धा दोनों जगाती है। वह रक्षा कर सकती है और भिन्न परिस्थितियों में वह प्रतिशोध में विनाश लीला भी कर सकती है। प्रसन्न होने पर वह प्रत्येक इच्छा पूरी कर सकती है, कुछ होने पर वह अभूतपूर्व विभीषिका ला सकती है। यहाँ तक कि देवता भी उसके समक्ष स्वयं को असहाय पाते हैं और जब वह सक्रियय होने का निर्णय करती है तब वे हस्तक्षेप नहीं करते। उसकी कुछ विशेषताएँ सभी स्त्रियों में सन्निहित मानी जाती है। परन्तु स्त्री की एक और तस्वीर है और इसे भी धार्मिक लेखन तथा लोकगीतों में प्रबल समर्थन प्रदान किया गया है। स्त्रियों को चंचल और कमजोर माना जाता है। वह ऐन्द्रिक, बहकाने वाली, मिथ्यावादिता, मुर्खता, लालच, धूर्तता, अपवित्रता में प्रवृत्त तथा बिना विचारे काम करने वाली है। इस प्रकार उसे सभी बुराईयों की जड़ माना जा सकता है। साथ ही स्त्री को कमजोर भी माना जाता है इसी कारण उसे अपने जीवन के सभी चरणों में सुरक्षा चाहिए, बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पति की मृत्यु के बाद पुत्रों से प्राप्त सुरक्षा। स्त्री की ये दोनों छवियाँ परस्पर विरोधी हैं। स्वीकृत रूढ़ रूपों में झुकाव नकारात्मक और अपमानजनक छवि की ओर है। शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री को एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। उनकी कहानियाँ नायिका प्रधान है। 'तिरिया चरित्तर', 'सिरी उपमा जोग', 'कसाईबाड़ा', 'अकालदण्ड', 'तर्पण', 'कुच्ची का कानून' आदि में स्त्री की वेदना, उसका संघर्ष, अपमान, प्रताड़ना, कामवासना, पारस्परिक रिश्तों की जकड़न सब कुछ गहरी वेदना के साथ अभिव्यक्त होते हैं। शिवमूर्ति की कहानियों के अधिकांश स्त्री पात्र गरीबी, बाल-विवाह के कारण उत्पन्न सामाजिक विषमताओं व पुरुष-समाज के बलात्कारी आचरण से त्रस्त हैं और वे यथावसर इस सबके प्रति विद्रोह करते नजर आती हैं। प्रतिरोध के बुलंद स्वर उठाना और शारीरिक रूप से भी अन्याय के विरुद्ध लड़ना, इन कथा-पात्रों का सामान्य स्वभाव है। आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण का प्रतिरोध करना ही शिवमूर्ति की कहानियों का मुख्य उद्देश्य अथवा केन्द्रीय भाव है। ऐसे प्रसंगों में उनकी भाषा भी गाँवों में प्रचलित अवधी की भाव-भरी, प्रियकर व कहीं-कहीं स्वाभाविक गाली-गलौज भरी शब्दावली से सनकर बड़ी ही चमत्कारिक हो उठती है। उनकी कहानी "कसाईबाड़ा" की मुख्य कथा-पात्र शनिचरी एक अनपढ़, गरीब व शोषण की शिकार स्त्री है, जिसकी बेटी रूपमती को ग्राम-प्रधान ने

सामूहिक-विवाह कार्यक्रम के बहाने पैसे लेकर शहर के एक आदमी को वैश्या वृत्ति करने के लिए सौंप दिया था। शनिचरी को ग्राम-प्रधान का प्रतिद्वंदी व पेशे से अध्यापक, गाँव का चालक लीडर अपने लाभ के लिए भड़काकर उस ग्राम प्रधान के दरवाजे पर अनशन के लिए बैठा देता है। ग्राम-प्रधान जैसे ही घर के बाहर आता है, शनिचरी परधान से बैखौफ भीड़ जाती है, शनिचरी प्रधान का पैर पकड़कर गुहार लगाती है, "मोर बिटिया वापस कर दे बेइमनवा, मोर फूल ऐसी बिटिया गाय-बकरी की नाई बेंचि के तिजोरी भरै वाले ! तोरे अंग-अंग से कोढ़ फूटी कै बदर-बदर चूई रे कोढ़िया....।"[10] इस कहानी में शनिचरी एक ऐसी स्त्री है जो गरीब तो है ही साथ में बेटी उसका एक मात्र ही सहारा थी उसे भी सामूहिक-विवाह के नाम पर छल से उसे छिन कर बेच दिया जाता है। निश्चित ही 'कसाईबाड़ा' कहानी शिवमूर्ति की एक बेहद प्रभावशाली कहानी है, जो हमारे ग्रामीण समाज में व्याप्त शोषण व अत्याचार, राजनीतिक मूल्य, प्रशासनिक भ्रष्टाचार आदि के दमन तथा देश में नए संविधान लागू होने के बाद आज भी कसाईबाड़े रूपी ऐसे तमाम गाँव की स्त्री पर होने वाली विडंबना को पुरजोर ढंग से उद्घाटित करती है।

'सिरी उपमा जोग' कहानी में एक स्त्री के आत्मसमर्पण और त्याग की कहानी है। एक स्त्री जो अपने पति की पढाई के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर देती है, और जैसे ही उसके पति को एक अच्छा पद पर नौकरी मिलती है उसके बाद उसके पति का मन उस स्त्री से टूटने लगता है। वह शहरी जीवन जीना चाहता है। आज वही पत्नी उसे गँवारू, अनपढ़ नजर आने लगती है। पत्नी को कहीं-न-कहीं लगता है कि अब वे अपने पति के लायक नहीं है और पति से कहती है कि - "अब मैं आपके जोग नहीं रह गयी हूँ, कोई शहराती 'मेम' ढूँढिए अपने लिए।"[11] तब उसका पति प्रश्न करता है क्यों तुम कहाँ जाओगी ? तो वो भारतीय स्त्री की सोच को प्रस्तुत करते हुए कहती है कि - "जाऊँगी कहाँ, यहाँ रहकर ससुरजी की सेवा करुँगी। आपका घर दुवार सँभालूँगी। जब कभी आप गाँव आएँगे आपकी सेवा करुँगी।"[12] भारतीय स्त्री (पत्नी) के त्याग और प्रेम को शिवमूर्ति ने लालू की अम्मा के रूप में दिखाया है। शिवमूर्ति की कहानियों की सतह पर दिखता यथार्थ भीतर से कैसे यथास्थितिवाद है, उसको समझने के लिए 'केसर कस्तूरी' शीर्षक कहानी को बतौर उदाहरण लिया जा सकता **है**। इस कहानी में केसर के दुःख और उसके परिवार और समाज की मौकापरस्ती उपेक्षा और अकर्मण्यता हमारे भीतर केसर के लिए चिंता तो पैदा करती है परन्तु उसके समानांतर उसके

प्रति उसके पिता और पिता सदृश्य मौसा की विकलांग संवेदनहीनता हमारे भीतर एक गहरे क्षोभ को भी जन्म देती है। केसर के मुँह खोलकर अपना दुःख-दर्द कहने के बावजूद उसके पिता और मौसा का उसे राम भरोसे छोड़ देना कितने दुःख की बात है। परन्तु केसर ने अपने दुःख से लड़ने का तरीका भी खोज निकाला है, सिलाई-कढ़ाई कर अपना और परिवार का पेट पालती है। मन बदलने के लिए मायका घूम आती है। अपने पिता और मौसा के प्रस्ताव को ठुकराते हुए वह कहती है - "दुख तो काटने से ही कटेगा बप्पा!...भागने से तो और पिछुआएगा।"[13] जीवन और जिजीविषा की ऊष्मा से दमकते और यथार्थ की कड़वाहट और उसकी बारीकियों को सूक्ष्मता से समझने वाले ऐसे चरित्र को अचानक से पिता की पगड़ी बचाने का भरोसा देती है। केशर अपनी नियति पर रोती-बिसूरती एक भारतीय नारी के रूप में चित्रित है। केशर के पिता बहुत दुखी है कि वे उसके लिए कुछ भी नहीं कर पाये पर केसर इसके लिए पिता से कहती है - "मेरी सोच में अपनी देह न गलाइएगा। जितने दिन आपकी बारी-फूलवारी में खेलना-खाना बदा था, खेले-खाए। अब मेरा हिस्सा मुझे 'अलगिया' मिल गया है। तो जैसा भी है उसे भोगना होगा, खेना होगा। माँ-बाप जनम के साथी होते हैं पापा। 'करम-रेख' तो सभी की न्यारी है। जब जनक जैसे बाप राजा भी थे और 'ब्रह्म-ज्ञानी' भी, जिनकी इतनी औकात थी कि सौ बेटी-दामादों को घर जमाई रखकर उमर भर खिला सकते थे - तीन लोक के मालिक से बेटी ब्याहकर भी उमर भर उसे सुखी देखने को तरस गए तो हम गरीब लोगों की क्या औकात ?"[14] यहाँ केसर नहीं, केसर के रूप में मूर्त हिन्दुस्तानी नारी का हजारों-हजार पीढ़ियों से विरासत में मिला अनुभव और यथार्थ को उसके ठोस व्यावहारिक रूप में पकड़ लेने की अंतःचेतना बोल रही थी। केशर आत्मविश्वास से सराबोर नारी है। पर यह बहुत बड़ी विडंबना है कि आज जब दुनिया विकास के किसी मोड़ पर खड़ी है वहाँ केशर जैसी लड़की अभी भी उन्हीं सरोकारों में जी रही है। अफ़सोस की बात यह है कि संस्कार इतने गहराई से जमे हुए हैं कि इसके खिलाफ खड़े होने कि जुर्रत नहीं कर पाती है। केशर जैसी लड़की इसे कर्म की बात मानकर आंसुओं से भरी जिन्दगी जीती रहती है। शिवमूर्ति ने इन्ही बातों को देखते हुए अपने कहानियों के केंद्र में स्त्री को रखा है।

शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' कहानी में एक लाचार स्त्री की दारुण पीड़ा को दिखाया गया है। 'तिरिया चरित्तर' की नायिका विमली अपने पैरों पर खड़ा होना तो जानती है पर उसके उत्पीडन के लिए घात लगाकर बैठे पुरुषों के चक्रव्यूह को भेदना नहीं जानती है। स्त्री को घर के

बाहर का संसार जानने का निजी अनुभव हो, इससे पहले ही उस पर दूसरों के अनुभव थोप दिए जाते हैं। यानी घर और बाहर की दुनिया का विभाजन पितृसत्ता के सबसे सफल रणनीतियों में से एक है और यह विभाजन स्त्री के शरीर और मन पर बलपूर्वक नियंत्रण स्थापित करने के लक्ष्यपूर्ति से जुड़ा होता है। जब इनका विवेचन होता है तो समाज की धर्म से लेकर परिवार-विवाह तक की कितनी ही संस्थाओं के बारे में रूमानी-शुद्धतावादी धारणाओं में खलबली मचने लगती है। शिवमूर्ति की अगर इस कहानी का सजग पाठ करें तो यह सामाजिक हकीकत सामने आ जाती है कि निम्नवर्गी स्त्री की देह कमजोर आर्थिक स्थिति और पुरुषों के मध्य श्रम की विवशता के कारण अधिक असुरक्षित होती है। विमली पहले तो अपने गाँव में पुरूषों के बीच असुरक्षित होती है और फिर अपने ही ससुर के हांथों बलात्कार का शिकार होती है। पर विमली एक गूंगी-बहरी गुड़िया नहीं है जो हर जुल्म को सिर झुका कर सह ले। वह विरोध करती है, लड़ती है और ललकारती है और इस रूप में अपने व्यक्तित्व का परिचय देती है। वह वक्त आने पर हिंसक प्रतिरोध के लिए भी तैयार हो जाती है। गाँव में सजा सुनाये जाने पर वह विरोध में तनकर कड़ी होती है और कहती है - "मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ- आ..क्थू..! देखूं कौन माई का लाल दगनी दागता है।"[15] पर अंत में उसकी मांग गरम कलछुल से दाग दी जाती है ताकि जिस सुहाग चिह्न के कारण स्त्री को स्वीकारा जाता है, उसी चिह्न से उसे सर्वदा के लिए वंचित किया जा सके। आज का नारीवाद स्त्रीत्व के जिन प्रतीकों जैसे सिंदूर, चूड़ी, बुर्का, गहना आदि को स्त्रियों के खिलाफ साजिश बताकर उनसे मुक्ति की बात कहता है, वह मुक्ति अगर सचमुच संभव हो जाए तो 'तिरिया चरित्तर' की विमली को इस तरह की आपराधिक सजा देने का आनंद समाज को नहीं मिलेगा और वह फिर ऐसी सजा देगा भी नहीं। शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' की विमली दुनिया की सारी औरतों का प्रतिनिधित्व करती है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शिकार होती है। समाज और परिवार जिन्हें झूठ-मूठ अपमानित करता है, अपराधी घोषित करके दण्डित करता है। उनकी गलती बस इतनी है कि वह स्याह और सफ़ेद का भेद जानती है और जोर देकर काले को काला और सफ़ेद को सफ़ेद कहती हैं। गलत बातों से दबती नहीं हैं, चीख-चिल्ला कर अपनी बात कहती है, असत्य का पर्दाफाश करना चाहती हैं। उनके अदम्य साहस को समाज के तथाकथित सत्ताधारी लोग सहन नहीं कर पाते हैं। समाज उनका मुहं बंद करने के लिए घर के भीतर उनकी दुर्दशा करता है, बाहर सामूहिक रूप से उन्हें सजा देता है। क्या सत्य को ऐसे दबाया जा सकता है

? इसी स्थान पर रचनाकार सामने आता है, वह दुनिया को सच्चाई से परिचित कराता है। 'तिरिया चरित्तर' की विमली वैश्विक फलक पर उभरती है और शिवमूर्ति का लेखन वैश्विक बनता है। शिवमूर्ति की एक और कहानी है 'अकालदंड' इस कहानी में राहत-सामग्री बंटवाने वाला इलाके का सिकरेटरी मेहनत-मजूरी कर अपना व बूढ़ी का पेट पालने वाली निम्न जाति की युवती सुरजी की आकर्षक देह को भोगने के लिए पागल हो उठता है। वह उसकी इज्जत लूटने के लिए उतावला होकर एक रात सुरजी की झोपडी में घुस जाता है। वह सुरजी को प्रलोभन देता है कि वह उसका उद्धार कर देगा। सुरजी मुंह तोड़ जवाब देती है , उद्धार जाकर अपनी माई-बहन का कर दाड़ी जार उन्हीं को पढ़ा अपना यह 'परेमसागर'पर फिर भी सिकरेटरी वासना में अँधा है। वह उसे फिर लालच देता है। शिवमूर्ति ने इस अवसर पर सुरजी की निर्भीकता और भाव दोनों का सम्मिश्रण चित्रण किया है वह बहुत ही प्रभावशाली है। "सिकरेटरी की काली छाया आगे बढ़ती देख गुर्राती है सुरजी, ख-आन...ख़बरदार जो आगे बढ़ा। वह दूसरे कोने की ओर पिछड़ती जा रही है, मुँह झौसि देब दहिजार के पूत।"[16] सिकरेटरी फिर भी नहीं मानता। वह जोर-जबर्दस्ती पर उतर आता है। यहाँ पर शिवमूर्ति अपनी व्यंग्य-भरी धारदार भाषा में स्त्री-विद्रोह का जो रूप प्रस्तुत करते हैं, वह अद्भूत है। "लात का पक्का धक्का पिछवाड़े लगता है तो औंधे मुँह जाकर बाँस के चौखट से टकराते हैं। आगे के दोनों दांत घोडा-दंत निकल भागे। बाप रे। उठकर खून थूकने तक की ताब नहीं। पड़े-पड़े भैंसे की तरह हांफ रहे हैं। "फिर गुर्राती है सुरजी, भलमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव। नाही त अबही गोहार लगाय देब त तोहर भद्दरा उतरि जाए।"[17] इसी तरह शिवमूर्ति की 'अकाल दंड' एक ऐसी कहानी है, जिसमें गरीबी, अत्याचार व शोषण की शिकार नायिका प्रतिरोध व संघर्ष करते-करते एक ऐसे मुकाम पर पहुँच जाती है, जहाँ वह रण-चंडी बनकर दुश्मन पर हमला कर देती है और अंततः आततायी को सजा देने में सफल होती है, भले ही एक अपराधिनी बनकर। शिवमूर्ति की अन्य कहानियों में भी प्रतिरोध के स्त्री-स्वर तरह-तरह के प्रसंगों में बिखरे पड़े हैं। ये स्वर कहीं पत्नी के हैं, कहीं माँ के, कहीं बहू के तो कहीं एक सामान्य अबला के। 'भरतनाट्यम' कहानी में तो शिवमूर्ति ने एक नाकारा व बेरोजगार बेटे के प्रति माँ के भीतर उपजे गुस्से को भी एक अलग ही तरह का नायाब सा खालिश ग्रामीण रूपक गढ़कर उभारा है। यहाँ बेटा गोबर से कंडे पाथती अपनी माँ की शारीरिक भाषा के माध्यम से ही उसके गुस्से की तीव्रता को महसूस कर लेता

है - "मुझे देखकर वे अपना हाथ गोबर पर और जोर-जोर से पटकने लगती है। लगता है यह हाथ गोबर पर नहीं, मेरे गालों पर पड़ रहा है-थप्प-थप्प ! और मेरे चेहरे पर गोबर छोप उठा है।"[18]

शिवमूर्ति की कहानियाँ मुख्यतः स्त्री विमर्श की कहानियाँ हैंकिन्तु उनके स्त्री विमर्श के केंद्र में आज की पढ़ी लिखी, जागरूक नारी है जो पुरुष समाज से बराबरी का दर्जा पाने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रही है। सामाजिक व बौद्धिकस्तर पर अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए आर्थिक व राजनीतिक ताकत जुटा रही है। अपने यौनिक अधिकारों के लिए सतर्क, भद्र लोक की नारी नहीं है। उनका स्त्री विमर्श समाज की उन निम्नवर्गीय औरतों के शारीरिक व आत्मीय सौन्दर्य, दैहिक ताप व उत्पीडन, जिजीविषा, प्रतिरोध, राग-द्वेष, पारिवारिक क्लेश आदि पर केन्द्रित है, जो दूर दराज के गाँवों में घर-द्वार की सीमाओं में कैद होकर अपना जीवन गुजार रही है। यहाँ लक्ष्य बड़े नहीं है किन्तु आशय बड़े हैं। यहाँ अन्याय व शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का दायरा व्यापक नहीं है किन्तु उसमें अथाह गहराई है। यहाँ शक्ति के संचयन, सुनिश्चित संघर्ष और जीत हासिल करने का कोई रोडमैप नहीं है किन्तु ये आख्यान, अनुभूति की गहराई, अभिव्यक्ति की उन्मुक्तता, प्रतिवाद की तीक्ष्णता व यथार्थ के सत्यापन से ओत-प्रोत हैं। इनमें फैंटेसी से गुजरती हुई अथवा प्रतीकात्मक आदर्शवाद के सहारे स्थापित मान्यताओं की उलट-पुलट करती हुई नायिकायें नहीं है। इनमें तो अनपढ़, गरीब, विस्थापित, बाल-विवाहिता, शोषित व उपेक्षित वर्ग की साधारण स्त्रियों का जिंदगीनामा है। जिसमें न हार की फ़िक्र है, न जीत की, बस संघर्ष ही संघर्ष है, वेदना ही वेदना है। शिवमूर्ति स्त्री के इसी संघर्ष को अपनी कहानियों में हमेशा ही आगे रखते हैं। बाकि सभी कुछ गौण एवं अनुषांगिक रहता है। चाहे वह 'तिरिया चरित्तर' की विमली हो या 'कसाईबाड़ा' की शनिचरी हो, 'अकाल दंड' की सुरजी हो हर जगह नारी अस्मिता की लड़ाई है, वह भी अति साधारण एवं गरीब तथा लाचार स्त्री-पात्रों के माध्यम से। इस लड़ाई में प्रायः स्त्री हारती हुई ही दिखाई देती है। परन्तु कहानी पाठकों के मन में संवेदना का उबाल जगाने का अपना काम कर जाती है। वह स्त्री की मुक्ति की छटपटाहट को बड़े ही प्रभावशाली तरीके से हमारे दिलो-दिमाग में दर्ज करा देती ही।

4. ग. राजनैतिक चेतना

समाज में आज चतुर्दिक भ्रष्ट वातावरण फैला हुआ है। हमारी सामाजिक, राजनीतिक स्थितियाँ राजनीति और प्रशासन द्वारा ही नियंत्रित होती है। राजनीति और प्रशासन में परिव्याप्त

भ्रष्टता के प्रति कहानीकार की दृष्टि अत्यंत सजग रूप में है। सजग कहानीकारों ने देश के इन राजनीतिक घटना-क्रमों पर अपनी प्रतिक्रिया कहानियों के माध्यम से व्यक्त की है। आज की राजनैतिक व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो गयी है कि कथाकार की दृष्टि का उस तरफ जाना निश्चित ही है। समकालीन कहानियों में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आचरण तथा काले कारनामों को देखा जा सकता है। आज के कहानीकारों की कहानियों में शोषण मूलक पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति गहरे असंतोष की आग जल रही है। यही आग कहीं-कहीं धुआं दे रही है और कहीं चिंगारी या लपटों में परिवर्तन हो रही है। सत्ताधारी नेताओं ने समाजवाद, गरीबी हटाओ जैसे नारों को उछालकर सामान्य जनता के वोटों को लूटने का षड्यंत्र किया या षड्यंत्र अभी भी चालू हैं। जनता को खुशहाल बनाने की चिंता से मुक्त सत्ता के सुविधाभोगी नेताओं ने अधिकारियों, ठेकेदारों, सामंतों, बड़े किसानों, पूंजीपतियों और दलालों को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर दिया है। इन नेताओं को न प्रजा में आस्था है और न पार्टी में। वस्तुतः समसामयिक राजनीति आदर्शच्युत हो गयी है। आज के समय पर राजनीति में भ्रष्टाचार का सर्वत्र बोलबाला है। आज सत्ता और विपक्ष दोनों की राजनीति का लक्ष्य जन सेवा न होकर सरकारी कुर्सी हथियाने का हो गया है। नेताओं ने अपना प्रभाव छुटभैया नेताओं, मुखिया, सरपंचों और यूनियन के नेताओं पर भी छोड़ा है। ये सामूहिक हित के नाम पर व्यक्तिगत हित साधने में लगे हैं और जनता के हकों को यथासामर्थ्य यथासंभव मारने के तिकड़म में दिन रात एक कर रहे हैं। जनता छली जा रही है। नेता अपने छल-छद्म से त्याग को ब्याज सहित वसूल रहे हैं। राजनीति का इस कदर अपराधीकरण हो चुका है कि राजनीति के लफड़े में अब आम आदमी नहीं पड़ना चाहता है अगर पड़े भी तो वह सफल नहीं हो सकता। सत्य तो यह है कि आज राजनीति, गुंडों का कम्पटीशन बन गया है। राजनीति में आज वही सफल है जो खुद गुंडा हो या उसके पीछे गुंडों का एक दल हो। गुंडों में एक तरह की नैतिकता भी है कि वे अपने गुरु और साथियों से दगा नहीं करते, किन्तु राजनीति में तो यही समझ में नहीं आता कि गुरु कौन है और चेला कौन है। इस गुंडागिरी के अलावा आज समाज में और भी अनेक चीज हो रही है। जैसे-रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, कोटे परमिट की लेन-देन की राजनीति ने सारे वातावरण को ही बुरी तरह से प्रदूषित कर रखा है। इनका घर आंदोलन, हड़ताल जनता के हितार्थ कम अपने को सत्ता में लाने के उद्देश्य से अधिक होता है। समाजवादी, गाँधीवादी कहलाने वाले ये नेता अपने फायदे के लिए हिंसा, तोड़फोड़, जुलूस, साम्प्रदायिक दंगे तक करवा सकते हैं। आज की राजनीति ने पुलिस को तो भ्रष्ट बनाया ही बार-बार

सेना के प्रयोग से सेना भी भ्रष्टाचार में लिप्त हो रही है। इनकी मार सामान्य शोषित जन को प्रायः झेलनी पड़ती है। फलस्वरूप समकालीन कहानीकारों की दृष्टि इधर गई है। समकालीन कथाकारों ने पुलिस और सेना पर अपना आक्रोश व्यक्त किया है। पुलिस ने जनसेवी संस्था के रूप मे कभी भी अपना काम नहीं किया । इसके सर्वथा विपरीत पुलिस ने अपनी छवि भ्रष्टता, रिश्वतखोरी, हृदयहीनता, पूंजीवाद व्यवस्था के पक्षधर के रूप में प्रस्तुत की । यद्यपि पुलिस और सेना में साधारण किसान मजदूर वर्ग के लोग ही आते हैं। परन्तु सबसे अधिक इनके डंडे और गोलियाँ आम आदमी के ऊपर ही बरसाई जाती है। शिवमूर्ति की कहानी संग्रह 'केसर-कस्तूरी' की पहली कहानी 'कसाईबाड़ा' है जो भारतीय राजनीति के वास्तविक चेहरे को उजागर करती है । यह कहानी लोकतान्त्रिक पद्धति के प्राथमिक सोपान गाँव और ग्राम पंचायत के सर्वोच्च पद ग्राम-प्रधान को लेकर मचे घमासान और उसी के मद्देनजर किये जा रहे कठिन प्रयत्नों की कहानी है।

परधानी का चुनाव जितना सत्ता सुख के सपने को पूरा करना है उतना ही ईमानदारी, सच्चाई, नैतिकता को स्वाहा करते हुए पाँच वर्षों में लाखों कमाना भी है। जनसेवा का ढोंग करते हुए अपना घर भरना है। इस क्रम में शनिचरी कठपुतली बनी। जो इस कहानी की मुख्य पात्र है। चुनाव में प्रधान बनने की अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने के लिए लीडर जी ने मास्टर से छुट्टी ले ली है। आखिर कौन मरे खपे छोटी सी नौकरी में। राजनीति से बेहतर करियर आखिर क्या हो सकता है ? लोकतंत्र के प्रहरी अब इसे धन कमाने का एक बेहतर उद्यम मानने लगे हैं और जब भी यह घटित होता है तो लोकतंत्र लोक पर बड़ा ही गर्व करने लगता है। विकास योजनाओं के नाम पर आ रहा धन अपनी जेब मे भरने का एकमात्र माध्यम राजनीति ही हो सकती है। आज गाँव के प्रधान से लेकर देश के मुखिया तक येन-केन-प्रकरेण धन लूटने खसोटने मे लगे हुए हैं। इस कहानी मे भी एक आदर्श विवाह का आयोजन धूम-धड़ाके के साथ किया गया। ए.डी.ओ, बी.डी.ओ जैसे अधिकारियों से लेकर प्रमुख, प्रधान, सरपंच जैसे राजनीतिक कर्ता-धर्ताओं की देख-रेख मे यह आयोजन संपन्न हुआ लेकिन बाद में पता लगा कि यह आदर्श-विवाह का आयोजन न हो कर "लड़कियों" को बेचने-खरीदने का आयोजन था। इसका पता चलने पर लीडर जी के उकसाने पर शनिचरी प्रधान के दरवाजे पर भूख हड़ताल पर बैठ गयी। कहानी में वर्णित इस आदर्श-विवाह आयोजन में भाग लेने वाले आम लोगों की विड़म्बना खुद कहानीकार शिवमूर्ति के शब्दों मे ही देखिये - "जिनकी बेटियाँ उस समारोह मे ब्याही गयी थीं,

उनके अंदर खलबली मच गयी। करें भी तो क्या ? एक तरफ प्रधान से खिलाफत। बिरादरी में बदनामी। हुक्का-पानी बंद होने का डर। छोटे-बेटे-बेटियों की शादी मे रुकावट और दूसरी तरफ बेटी की ममता। शनिचरी की तरफदारी करके बेटी का पता लगाएँ या-हुआ सो हुआ बात को दबाकर बदनामी से बचें ?।"[19] यह है आम जन की ऊहापोह जो बदनामी से बचने – बचाने की आड़ में अपना सब कुछ गिरवी रख देते हैं।

लड़कियों की खरीद फ़रोख्त की बात थाने मे पहुँचती है। परन्तु थाने मे जो दरोगा है वह ऐसा दरोगा है जो प्रधान जी को सी.आई.डी. के नाम से आतंकित करके मंदिर बनाने के नाम से चंदा माँगता है कि - "वे (दरोगा) अचार की गठरी को हाथ मे लेकर तौलते हुए कहते है, 'आपको पता होगा, मैं मंदिर बनवा रहा हूँ थाने के सामने उसमें यथाशक्ति..' क्यों नहीं सरकार क्यों नहीं। मंदिर, धर्मशाला के लिए तो .....वे (प्रधान) जेब मे हाथ डालते हैं, आजकल तो हुजूर, दुनिया से धरम-ईमान नाम की चीज ही गायब होती जा रही है, लीजिए संभालिए हुजूर।' फिर गिनने के बाद दरोगा जी कहते है कि – 'आप मजाक समझ रहे हैं।"[20] के किस तरह से दरोगा सी.आई.डी के नाम से आतंकित करके मंदिर के नाम पर पैसा लेता है।

आजादी की प्राप्ति के बावजूद सरकार की पूँजीवादी नीतियों के कारण आम आदमी आर्थिक दृष्टि से आजाद नहीं हो पाया। उसका शोषण पूर्ववत् जारी है। समकालीन कहानियों का सर्वहारा वर्ग महसूस करता है कि पूँजीवादी राज्य सत्ता ने उसका सुख-चैन छीन लिया है। शोषकों, सामंतों की तिजोरियों में उसकी खुशहाली कैद है। प्रजातंत्र तो जैसे पूंजीपतियों की सुविधाओं का ही नाम हो गया है। आम आदमी की झोली खाली ही रह जाती है। जनकल्याण के दफ्तर की सार्थकता साइनबोर्ड तक सीमित है। आम आदमी उन दफ्तरों से केवल झिडकियां पाता है। सरकारी कर्मचारी तथा अफसर जैसे सब जनवादी संघर्षों के दमन के लिए नियुक्त किये गए हैं। इन संपूर्ण अव्यवस्थाओं की जड़ नेताओं का स्वार्थ केन्द्रित दृष्टिकोण है। समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में शोषण और अन्याय के विरुद्ध आम आदमी की संघर्षकामी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति की है। उनकी कहानियों में वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों का अपहरण पूँजीवादी व्यवस्था उसकी आर्थिक विवशता या एकजुट विरोध के अभाव के कारण ही करती है।

अगर आज राजनीति को भारतीय समाज में देखें तो राजनीति को एक विशेष स्थान मिला है। राजनीति का शिकंजा इतना अधिक जकड़ा हुआ है कि उससे मुक्ति की बात व्यक्ति सोच भी नहीं सकता । आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्ट राजनीति प्रवेश कर चुकी है । राजनैतिक, सिद्धान्तहीनता, अवसरवादिता, मूल्यहीनता इत्यादि तत्वों के माध्यम से राजनीति को समझा जा सकता है। आज देश को चलाने वाले नेता ही भ्रष्ट व अनैतिक हो जायेंगे तो देश का भविष्य कैसे सुरक्षित रह पाएगा? तथा शोषक व शोषित वर्ग के मध्य गहरी खाई कैसे मिट पाएगी ? शिवमूर्ति की कहानियों के केंद्र में गाँव है, गाँव की छिछली राजनीति, पंचायतों के निर्णय और उन सड़ी-गली परम्परा आदि को दिखाया गया है। इन सब की सच में छिपे यथार्थ की परतों को शिवमूर्ति जिस बारीकी से उघाड़ते हैं उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम होगी। उन्होंने अपनी कहानी 'बनाना रिपब्लिक' कथा सूत्रों के माध्यम से पंचायती व्यवस्था में पंचायत के चुनावों में अपनाये जाने वाले तमाम हथकंडो, चालाकियों, छल-कपट आदि को अनुभूति, संवेदना और विचार में तालमेल को संजोया है। शिवमूर्ति ने अपनी इस कहानी में समग्र भारत में चुनाव के दौरान अपनाये जाने वाले तरकीबों का यथार्थ चित्रण किया है। जो क्षेत्र सामान्य वर्ग के लिए था उसे दलितों के लिए आरक्षित कर दिया जाता है। ठाकुर साहब जग्गू यानि जगत नारायण को अपना मोहरा बनाकर चुनावी दंगल में उतारना चाहते हैं। शुरू-शुरू में जग्गू झिझकता है। लेकिन ठाकुर साहब उसे जो पट्टी पढ़ता है उससे वह अचूक होती है - "सालाना पन्द्रह-बीस लाख तक खर्च करने का चांस रहता है। मनरेगा की मदत से तो चाहे जितना निकालो। बस कागज का पेटा पूरा करते रहो। नीचे से ऊपर तक सबका मुँह बंद करने के बाद भी रुपये में चार आना कहीं गया नहीं। पांच साल में पच्चीस लाख की बचत।"[21]

पंचायती चुनाव अन्य चुनावों से अधिक पेचीदा होता है। कई तरह के समीकरणों से यह चुनाव लड़कर जीता जाता है। इसमें ढेरों सारी गाँठे भी होती है। एक गाँठ सुलझी नहीं कि दूसरी उलझ जाती है। मुंशी जी जैसे लोग बाहर से हितैषी तो अन्दर से शकुनि बने रहते हैं। मतदातओं को लुभाने के लिए चुनाव के पहले, हफ्तों तक उम्मीदवारों की ओर से भंडारा चलता है। भोजन पानी तो मुफ्त में मिलता ही है, देशी- विदेशी शराब का इंतजाम रहता है। पदारथ मुंदर हो या ठाकुर का उम्मीदवार जग्गु, चुनाव में विजय हासिल करने के लिए लाखों रुपये खर्च करते हैं। शिवमूर्ति ने चुनाव

से पहले, चुनाव के दौरान तथा मतों की गिनती के दौरान दृश्यों (माइन्युट्स) को सिर्फ वर्णित नहीं किया है बल्कि कही तलख टिप्पणी की है तो कहीं व्यंग्य-विनोद किया है।

पूँजीवादी राज्य सत्ता की शोषण ने सर्वहारा वर्ग को आर्थिक सामाजिक दृष्टि से बदहाल कर दिया है, और सत्ता भोगियों ने उसका सब कुछ हड़प लिया है। इसलिए सत्ता पर कब्ज़ा किये बगैर सर्वहारा वर्ग की स्थिति सुधरने वाली नहीं है। कब्ज़ा के लिए हिंसक क्रांति की आवश्यकता होती है। समकालीन कहानियों का साहसी पात्र भ्रष्टाचार अन्याय और शोषण के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। उसके खिलाफ आवाज उठाता है और संघर्ष करता है। समकालीन कहानी का मूल स्वर मामूली आदमी की मानसिकता, तकलीफ, सीमाओं और संभावनाओं का तटस्थ अंकन है। अपनी समस्त दुर्बलता, विवशता और विसंगतियों में जीता जागता मामूली आदमी हर स्थितियों से संघर्ष करता नजर आता है। आम आदमी के अंतर्गत श्रमिक वर्ग भी आता है, जिसकी जीविका का मुख्य आधार मेहनत मशक्कत है। वह रोज कमाता है तभी खा पाता है। इस वर्ग का व्यापक प्रतिनिधित्व समकालीन कहानी में हुआ है। आज भी कहानियों में मजदूर अपने हक़ की लड़ाई में भागीदारी साथियों के साथ गद्दारी मक्कारी न करके सामूहिक शिरकत करता है। क्योंकि वह आज इस बात से पूरी तरह वाकिफ हो चूका है कि इन साधन संपन्न लोगों के खिलाफ बिना एकजुट संघर्ष के कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता है। इस व्यवस्था द्वारा पाले-पोसे गये लोग इतनी आसानी से घुटने टेकने वाले नहीं है क्योंकि इनकी हिफाजत के लिए संसद न्यायपालिका से लेकर पुलिस तक एक पैर पर खड़ी है। आज का आम-आदमी भी इस बात को अच्छी तरह समझने लगा है कि जब तक यह व्यवस्था कायम है वह अपने हक़ को हासिल नहीं कर सकता। क्योंकि यह व्यवस्था पूंजीपतियों को संरक्षण देती है उनकी रक्षा करती है।

सत्ता का नशा बड़ा विचित्र होता है। यह यूँ नहीं छूटता। ठाकुर साहब मुहर बनाकर जिस जग्गू को रखना चाहते थे उसी जग्गू में चेतना साकार होती है। ठाकुर के षड्यंत्र में जग्गू के पिता की जमीन को गिरवी रखने आदि को निष्फल बनाता है। विजय का प्रमाण पत्र आते ही जुलूस दलित बस्ती की ओर जाती है, ठाकुर के यहाँ नहीं, पासा बदल जाता है। ठाकुर अपने लोभ-लाभ के चलते खूद दलित बस्ती में आता है। उनके हाथ से पानी पीता है। दलित चेतना की विजय होती है। जग्गू प्रधानी का चुनाव ही नहीं जीतता बल्कि सत्ता के प्रभाव में आकर वह भी अपनी अस्मिता को भूला

देना चाहता है। चुनाव के पहले ही उसने सोच लिया था कि -"उसे तो अपना नाम भी पसंद नहीं। जगत नारायण तो फिर भी ठीक था, लेकिन लोगों ने उसे भी काट कर बाड़ा डाला...जग्गू। प्रधानी मिल जाए, हीरो-हौंडा मिल जाए और नाम बदल जाए, या एक कायदे का सरनेम मील जाए...जिससे थोड़ा रुआब झरे। 'टाइगर' कैसा रहेगा।"[22] जग्गू को कायदे का सरनेम मिल जाए, इसमें कोई बुराई नहीं है। अपना नाम बदलकर 'टाइगर' बनकर ठाकुर-बामन की तरह अपने और दूसरे लोगों का शोषण करे, दमन करे उन पर अत्याचार करे तो यह कैसी दलित चेतना ? शिवमूर्ति ने बिना कुछ कहे इस और संकेत किया है। सत्ता का स्वाद अभी चखा भी नहीं लेकिन नशे से मदहोश होने लगा है।

4. घ. आर्थिक स्थिति

आर्थिक शब्द का अर्थ 'धन' संबंधी है। धन में वे सभी मानवीय, प्राकृतिक, पूंजीगत तथा तकनीकी संसाधन सम्मिलित किए गए हैं, जिनके आधार पर उत्पादकता और आय का सृजन किया जा सकता है। स्थित होने की क्रिया या भाव, रहना या होना, अवस्थान, अस्तित्व को कहते हैं। अर्थात् आर्थिक दृष्टियों से प्रायः होने वाली अवस्था, दशा, हालत को ही आर्थिक स्थिति कहते हैं।

जीवन में ये अर्थाभाव सामान्य व्यक्ति अथवा समाज में निम्न-स्तरीय जीवन जीने वाले व्यक्तियों को ही भोगने पड़े हो, ऐसा नहीं है। समाज का उच्चवर्ग केवल पूँजिपति वर्ग और उस वर्ग को छोड़कर जो नंबर दो के पैसे के बल पर जीता है, उनलोगों को भी आर्थिक पैसे के बल पर जीना पड़ता है, उन लोगों को भी आर्थिक विषमताओं को भोगना पड़ा है। आजादी के बाद भी शोषक और शोषित वर्गों का अस्तित्व मिटा नहीं है। समाज में पूँजीवाद के समर्थक, सामंती वर्ग पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। आजादी ने उसकी पीड़ा को और अधिक तीव्रता प्रदान की, क्योंकि विसंगतियों की खाई तेजी से बढ़ती गयी। देश का उच्च सामंती वर्ग पहले भी शासक था, आज भी है। बल्कि उनके शोषण के नये तरीकों में काफी वृद्धि हुई है। समाजवादी सरकार की घोषणाओं और योजनाओं से लगता है कि आम आदमी की माली हालत सुधरने में कोई देर नहीं है जो भारत के राष्ट्रीय स्वरुप को ध्यान में रखकर आम आदमी के लिए बनायी गयी है। यद्यपि आर्थिक क्षेत्र में गरीबी हटाओ,काम के बदले अनाज, लघु एवं कुटीर उद्योग तथा भूमिहीन एवं बेरोजगार नागरिकों को ऋण सुविधाएँ आदि निःसंदेह आदर्श आर्थिक योजनाएँ हैं लेकिन इन सारी योजनाओं का लाभ किसको मिल रहा है या मिला है ? यह प्रश्न आज भी विचारणीय है। भ्रष्ट लोकतान्त्रिक व्यवस्था के चलते शोषित वर्ग तंगहाल है। न खाने

को रोटी, न पहनने को कपडे और न रहने के लिए घर वह इन तीन मौलिक आवश्यकताओं के जुगाड़ में ही पिसता जा रहा है। नगरों एवं महानगरों में रहने वाले मजदूर जो अपने श्रम को बेचकर पूंजीपति, ठेकेदार और बड़े घरानों के लिए बड़े-बड़े बांध, पुल और गगनचुम्बी इमारतें, कॉलोनियाँ बनाते हैं वह खुद रोटी और कपड़े के लिए मोहताज गन्दी झोपड़ियों में चिथड़ा और फटी बोरियाँ की टाट लपेटे जाड़े की रात काटतें हैं। उनके बच्चे और औरतें अपाहिज और भिखारी बनकर इन्हीं कॉलोनियों और पुलों पर भीख माँगते हैं। अतः इस प्रकार समकालीन कहानी व्यक्ति की आर्थिक समस्याओं, भूख, गरीबी और विभिन्न प्रकार के अर्थाभावों का बहुआयामी चित्रण कर आज के सामाजिक परिवेश से हमारी गहरी पहचान स्थापित कराती है।

समकालीन कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष और उसका अंतर्द्वंद्व आधुनिक जीवन में विशेष कर स्वतंत्रता के पश्चात् निरंतर बढ़ता जा रहा है। मध्यवर्ग उस वर्ग का नाम है जिसमें मानव निरंतर संकट के क्षणों से गुजरता है। उसे पग-पग पर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अंतर्द्वंद्व उसकी जिजीविषा है। वही उसे भटकाव देता है। वही उसके जीवन की नियति है। यही कारण समकालीन कहानी में मध्यवर्ग केन्द्रीय चरित्र हो गया और समकालीन कहानी में मध्यवर्गीय जीवन की विविधताओं, टूटन और अकेलेपन से अपनी असंगतियों को ही नयापन मान लिया गया और कहानी-संरचना की परंपरागत तकनीक को कथा-शून्यता की ओर अग्रसर किया गया। कहानी में अकेलापन विशेषत: मध्यवर्गीय अकेलेपन को आवश्यक विधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समकालीन कथाकार अकेलेपन और मृत्युबोध को जीवन का लक्षण नहीं मानते। इसलिए इस अकेलेपन को ख़त्म करने के लिए चरित्रों को सामाजिक जीवन से जोड़ देते हैं। यह अकेलापन निराशावाद और अध्यात्मवाद की ओर ले जाता है। इस अकेलेपन के अनुभव नकारात्मक है। यद्यपि समकालीन कहानी भी इस अपवाद से पूर्णतया बरी नहीं है क्योंकि समकालीन कहानी के विषय ज्यादातर मध्य वर्ग और निम्न वर्ग से उठाये गए हैं। शिवमूर्ति भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मध्यवर्ग और निम्नवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय युवा मानस रचनात्मकता के केंद्र में है। वह अपनी शोषण की जिम्मेदार शक्तियों से परिचित हो गया है। इसलिए उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय विड़ंबना, बोध, व्यंग्य एवं आक्रोश का इजहार है। मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की सबसे बड़ी विड़ंबना यह है कि वह व्यवस्था के यथास्थितिवाद का समर्थक होते हुए भी व्यवस्था के आतंक और भय से आक्रांत दिखाई

पड़ता है। क्योंकि मध्यवर्ग में सबसे बड़ा हिस्सा क्लर्कों का होता है। सरकारी और गैर सरकारी दफ्तरों में एक ही प्रकार के काम पूरी जिन्दगी भर करते तथा अपने आर्थिक एवं पारिवारिक संकटों से जूझते-जूझते क्लर्कों का जीवन अभाव पीड़ा एवं असंतोष के साथ बीत जाता है। आर्थिक तंगी इस वर्ग की प्रमुख समस्या है। वह नौकरी के द्वारा जो पाता है उससे वह न परिवार को ठीक तरह से पाल सकता है न कोई अपनी इच्छा ही पूर्ण कर सकता है। अतः हमेशा दूसरों के सामने हाथ फ़ैलाना उसकी विवशता है। एक बार वह किसी के बोझ के नीचे दब जाता है तो अन्याय के नीचे दबने को विवश हो जाता है। शिवमूर्ति की कहानी 'भरतनाट्यम' में किसी तरह मास्टरी छोड़ने के बाद उसे अपने ही पिता उसकी आर्थिक शोषण करता है। उसे अपने कपड़े भी साबुन के बदले रेह से धोने पड़ते हैं। उसे किसी-किसी तरह के आर्थिक उत्पीडन का सामना करना पड़ता है। शिवमूर्ति के शब्दों में - "मास्टरी छोड़ने के बाद घर में मेरी रही-सही साख भी समाप्त हो गयी थी। हर सदस्य मुझसे पहले से अधिक दूर हो गये। पिताजी ने साबुन, तेल, स्याही और कागज तक का पैसा देना बंद कर दिया। मुझे अपने कपड़े साबुन के बजाय रेह से ढोने पड़ते। दर्जा आठ तक तो मैं वैसे ही रेह से कपडे धोता रहा था, लेकिन ग्रेजुएट हो जाने के बाद भी आठ आने का साबुन न खरीद पाने की मज़बूरी मुझे कभी-कभी अन्दर से तोड़ने लगती। कमीज मेरे पास, जब से मैंने कमीज पहनना सिखा, तब से हमेशा एक ही रही है।"[23]

अभावग्रस्त जीवन बिताने के कारण इस वर्ग के व्यक्तियों में स्वप्नवादिता दिख पड़ती है। वे जीवन भर अपनी स्थिति से ऊपर उठने के असफल प्रयास करते रहते हैं। परन्तु हर बार वह असफल होते हैं। आर्थिक तंगी, परवशता, घुटन, विलासिता इस वर्ग के सामान्य संकट है। आय से अधिक व्यय होने के कारण इस वर्ग की छोटी-सी इच्छा भी कभी पूर्ण नहीं हो पाती। वह अपनी यथास्थिति को छिपाने का जितना अधिक प्रयास करता है, उतना ही वह नंगा होता जाता है। इस वर्ग की समस्याएँ सिर्फ यहीं तक ख़त्म नहीं हो जाती आर्थिक तंगी और पारिवारिक दायित्व भी होते हैं। शिवमूर्ति की कहानी 'केसर-कस्तूरी' में जब केसर की पैठी बेटी की मौत होती है तो उसके पिता और बप्पा दोनों आतें हैं । केसर को कुछ दिनों के लिए ले जाने के लिए ताकि वे कुछ दिन जगह बदलने से वह अपने दुःख को भूल जाएगी तो यह सुनने के बाद केसर तुरंत कुछ नहीं बोली थोड़ी देर बाद उसके बप्पा ने

अपनी बात को फिर से दोहराई तो केसर बोलती है कि - "मेरा चलना अब कैसे हो पाएगा बप्पा ? बूढ़ी बैल, बूढ़ी सास। इन्हें दाना-पानी कौन देगा ?"[24]

शिवमूर्ति की कहानियों में समाज गरीबी और भूख से जूझता हुआ तथा आर्थिक स्थिति से जूझता हुआ है। अकाल और भूखमरी की स्थितियाँ श्रम संस्कृति का ही सबसे अधिक अवमूल्यन करती है। गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप बन कर आती है। अकाल का दण्ड गरीब और श्रमरत समाज को ही भोगना पड़ता है। 'अकालदंड' जैसी कहानियाँ वस्तु स्थितियों की पहचान कराने में कहीं भी चूक नहीं करती। अकाल के समय शासन द्वारा चलाये जाने वाले राहत कार्यों की आड़ में कितनी अनैतिक्ताएँ होती हैं। कितना भ्रष्टाचार होता है, 'अकालदंड' से इसका भी खुलासा होता है। अकाल राहत भी लूट और कालाबाजारी का एक व्यवसाय है। सिकरेटरी और रंगी बाबू की नापाक संगती अकाल राहत के अनाज की कालाबाजारी करती है। कम मजदूरी में काम कराया जाता है। स्त्रियों का शारीरिक शोषण किया जाता है। बलशाली संपन्न वर्ग अकाल का सबसे अधिक फायदा उठाता है। शिवमूर्ति की कहानी 'अकालदंड' में गरीब को ही दबाया गया है और राहत के अनाज तथा पानी पर भी बलशाली संपन्न वर्ग का ही फायदा उठाता है। यहाँ जो आर्थिक स्थिति से कमजोर है उनके लिए अकाल से उत्पन्न विभीषिका के साथ मनुष्य का संघर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है। सुरजी इस संघर्ष का जीवंत पात्र है, जिसका पति परदेस में है और बूढ़ी अपाहिज तथा बीमार सास की जिम्मेदारी उस पर है। अकाल राहत कार्य के नाम पर बलशाली उच्च वर्ग मनमानी करता है। वह भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।

यहाँ तक कि राहत के लिए मिलने वाला पानी भी वे लोग अपने बैलों के लिए बड़े-बड़े ड्रम में भरते हैं और उससे बचे-खुचे ही कमजोर लोगों को मिलते हैं - "अब बैल बचे हैं तो कुछ गाड़ीवानों के पास या गाँव के दो-चार बड़े घरों में। 'जबरा' लोगों के पास जो दबदबेवाले हैं। पानी का टैंकर आने पर जो पहले अपने बैलों को पिलाने के लिए बड़े-बड़े ड्रम और छोड़ भर लेते हैं, तब गाँव के कमजोर लोगों की बारी आती है, अपने लिये गगरा-गगरी भरने की।"[25]

आज अर्थ के चलते स्त्री-पुरुष संबंधों में भी वह गर्माहट नहीं बल्कि एक अजीब ठंडक महसूस होती है। पति और पत्नी एक लम्बे अर्से बाद मिलने पर भी सहज नहीं हो पाते क्योंकि दोनों अपनी-अपनी आर्थिक विषमताओं से आक्रांत हैं। बेरोजगार नवयुवक और नवयुवतियों को रोजगार पाने या

नौकरी पक्की करने के लिए न जाने किस तरह के पापड़ बेलने पड़ते हैं, कितने गलत-सही समझौते करने पड़ते हैं। विशेषकर लड़कियों को रोजगार के लिए क्या-क्या सुनना पड़ता है। अपनी आर्थिक परिस्थितियों के चलते वह प्रतिकार भी नहीं कर पाती। आर्थिक परिस्थितियों के कारण वे सब कुछ सहन कर लेती है और रोजगार के लिए निकलती है। शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' में विमली एक गरीब घर की लड़की है जिसका भाई अपने कर्त्तव्य से पीछे हट गया था। तब विमली की माई ने लाख पैर पकड़े थे फिर भी उनको कुछ भी नहीं मिला जबकि उसकी बेटी उस घर में दो साल से काम करती आ रही थी। विमली के घर की आर्थिक स्थिति एकदम कमजोर थी। अपने घर के स्थिति से वह भलीभाँति परिचित थी, तब उसने फैसला किया कि अब उसे उस घर में काम नहीं करना जहाँ मांगने पर भीख भी नहीं मिल सकती। गाँव में नया-नया भट्ठा खुला है अब वह वहीं करेगी काम चाहे लोग जो भी बोले। उसने निर्णय लिया है कि अब कल से ही भट्ठे पर अपना नाम लिखवा देगी, वहाँ जितना ईंट ढोओं उतना पैसा लो। तो विमली भी अपने घर की स्थिति को देखते हुए काम पर जाने लगी, उसे देखते हुए लोगों ने बहुत कुछ कहा, पर उसने किसी की एक न सुनी। सबसे पहले तो सरपंच की घरवाली ने कहना शुरू किया कि - "हूँह ! सठिया गयी है क्या बुढ़िया ? अच्छे भले खाते-पीते घर में पड़ गई थी लड़की। जूठा-कूठा खाकर, घूरे पर सोकर भी चार साल में बाछी से गाय हो जाती। अब भट्ठे पर 'टरेनिंग' देगी बिटिया को। सायानी हो रही है ना। इस घर का गल्ला खा-खाकर उमर से पहले ही मस्ती चढ़ रही है। ले 'टरेनिंग'। बहुत लोग 'टरेनिंग' देने के लिए 'लोक' लेने को बैठे हैं वहाँ।"[26] इस तरह की बातें भी विमली और उसके परिवार को सुनना पड़ा पर क्या करे अपनी स्थिति के आगे तो ऐसी बात कुछ भी नहीं।

आज वैयक्तिक स्वतंत्रता का सर्वत्र हनन हो रहा है। अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति के लिए प्रत्येक जगह संघर्ष करना पड़ रहा है। वह हर जगह अपने आप को अकेला महसूस कर रहा है। इस अर्थ प्रधान युग में शरीर से लेकर स्वाभिमान की भी सौदेबाजी चलती है। इस दमघोटू माहौल में भी भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण के खिलाफ लड़ने वालों की संख्या कम हो सकती है पर पूर्णतः समाप्त नहीं। समकालीन कहानीकारों ने ऐसे पात्रों के प्रति अपना विशेष प्रेम और लगाव, समर्थन और सहयोग दर्शाया है। शिवमूर्ति की कहानी 'अकालदंड' में राहत-सामग्री बँटवाने वाला इलाके का सिकरेटरी मेहनत-मजदूरी कर अपनी बूढ़ी माई का पेट पालने वाली निम्न जाति की युवती सुरजी पर

आकर्षित हो जाता है। वे उसकी इज्जत के साथ खेलना चाहता है और एक रात सुरजी की झोपड़ी में घुस जाता है। वह सुरजी को लालच देता है कि वह उसका उद्धार कर देगा। तब सुरजी सिकरेटरी को बहुत कुछ सुनाती है, कहती है कि उद्धार जाकर अपनी माई बहन का कर। उन्हीं को पढ़ा अपना यह 'परेमसागर' परंतू सिकरेटरी वासना में अँधा और सुरजी एक गरीब महिला, वह उसकी गरीबी का फायदा उठाना चाहता है पर सुरजी गरीब ही सही पर अपने इज्जत को अपनी गरीबी के आगे नहीं आने देती और विद्रोह करती हुई कहती है कि "भलमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव। नाही तो अबही गोहार लगाया देब त तोहर भाद्वरा (भद्रता) उतरि जाए।"[27]

शिवमूर्ति की कहानियों में किसानों और मजदूरों की भूख, ऋणग्रस्तता, सामंती समाज द्वारा शोषण-दमन जैसी आर्थिक समस्याओं को केंद्र में रखकर उन्होंने कृषक-मजदूर समाज द्वारा किये जा रहे प्रतिरोध और संघर्ष को उनके जिन्दगी के यथार्थ के रूप में चित्रित किया है।

4. ङ. ग्रामीण जीवन का प्रामाणिक यथार्थ

शिवमूर्ति के यहाँ ग्रामीण जीवन के प्रमाणिक चित्र मिलते हैं। उनके 35 वर्ष का यह रचना-संसार ग्रामीण समाज की एक मुक्कमल दास्तान है। उन्होंने ग्रामीण जीवन से जुड़े यथार्थ को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों में स्त्री और दलित स्त्री विशेष रूप से विद्यमान है। शिवमूर्ति की कहानी तथा उपन्यास में अवध की ग्रामीण संस्कृति का बहुरूपी और गहरा अंकन मिलता है जो कहानियों से लोक विलोपन की मुहिम को अपने बल पर स्थगित करता है। परन्तु उनके यहाँ ग्रामीण जीवन केवल प्रकृति और ऋतुओं पर केन्द्रित न होकर मुख्य रूप से ग्रामीण जनों की कठिन स्थिति और संघर्षों के माध्यम से व्यक्त होता है। उन्होंने शहरों में आधुनिकता के संकट को देखने के स्थान पर गाँवों में आधुनिकता के अभाव को देखा। वे समाजशास्त्रीय सूचनाएँ नहीं रखते हैं बल्कि जीवन और यथार्थ से सीधी टक्कर से जो आवेग पैदा होता है, वही आवेग उनकी कथा-अभिव्यक्तियों में भी महसूस किया जा सकता है। यहाँ तक कि गाँव-देहात में स्थानीय बाबाओं और पीरों के नाम पर जो मेले लगते हैं और उनमें जिस तरह से गाते-बजाते, कीर्तन करते और सोहर-दादरा सुनते हुए गाँव का पूरा समाज हिस्सा लेता है। इसका बड़ा सजीव रूप कहानियों में मिल जाता है। "दुआर-मोहार बुहारने के बाद बिसराम ने बाहर से ही ऊँची आवाज में बताया, दोपहर में खाने नहीं आएगा वह आज। शिवाले पर सत्यनारायण की कथा कहवा रहा है। तब तक 'बरत' रहेगा। बहू अपना

खाना-पीना कर ले। वह एक ही 'टेम' शाम को खाएगा। गंगाजल का छिडकाव करके झोपड़ी 'पवित्तर' करने और 'चरनामरित' ग्रहण करने के बाद।"[28] इसी तरह उन्होंने गाँवों को केवल खेतिहर किसान का पर्याय समझने के बजाई ग्रामीण संरचना में शामिल कई अन्य पक्षों जैसे स्त्री-जीवन, जातिवाद, सरकारी भ्रष्टाचार और आपसी ईर्ष्या आदि को कथानकों का आधार बनाया है। उन्होंने हितों के स्तर पर किसान-जमींदारों के ध्रुवीकरण को ही ग्रामीण जीवन का एकमात्र सत्य मानने के बजाय खुद किसानों-दलितों के आंतरिक पारिवारिक जीवन पर नजर रखी और सबसे अधिक तो स्त्रियों के उत्पीडित जीवन को कई कोण से प्रस्तुत करते हैं। उनकी अतिप्रसिद्ध कहानी 'तिरियाचरित्तर' में गाँव के जीवन का यथार्थ एक साहसी पर हर तरफ से लाचार स्त्री की दारुण पीड़ा के माध्यम से बयान किया गया है। जैसे - "छन्न" ! कलछुल खाल से छुते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ। मांस जलने की चिरायंध ! चीत्कार सुनकर एकाध कुत्ते भौंकते हैं, एकाध रोने लगते हैं। चीखते-चीखते बेहोश हो गई पतोहू !"[29] उनकी कहानियों में चित्रित गाँव में हर तरह का आतंक है और यह आतंक सीधी गोलाबारी या हिंसा से नहीं बल्कि बहुत महीन स्तरों पर सरकार-राजनीति और सामंती संस्कृति के बीच से पैदा षड़यंत्रों के सहारे फैलाया गया है। उनकी कहानियों के गाँव को फ्रिज किए गए स्थिर रूपों में नहीं बल्कि उनके गतिशील रूप को देखने में भरोसा करती है। यहाँ गाँव केवल सपेरों के तमाशों, हाट-बाज़ार, झूलों से भरे बाग-बगीचे या हरी-भरी खेतिहर भूमि भर नहीं हैं बल्कि मानवीय पीड़ा तथा जीवन संघर्ष के रूप की तरह अधिक सामने आते हैं। लोकहृदय मे लीन होने को रसदशा भी कहा गया है और यह रसदशा उनकी कहानियों मे भी निष्पन्न होती है। चित्रित गाँवों में लैंगिक तथा जातीय संबंधों के स्तर पर सशक्त प्रतिरोध या किसी निर्णायक बदलाव की बहुत स्पष्ट आहटें नहीं सुनाई पड़ती है पर लोगों के व्यक्तिगत जीवन में मौजूद असंतोष और क्षोभ के स्वर साफ-साफ सुनाई देता है। "तेवरी बाबा उसका हाथ देखकर बता रहे थे कि लड़का भी बाप की तरह तोता-चश्म होगा। जैसे तोते को पालि- पोसिए, खिलाइए-पिलाइए लेकिन मौका पाते ही उड़ जाता है। वैसे यह भी....तो मैंने कहा, 'बाबा, तोता पंछी होता है, फिर भी अपनी आन नहीं छोड़ता, जरुर उड़ जाता है, तो आदमी होकर भला कोई कैसे अपनी आन छोड़ दे ? पोसना कैसे छोड़ दे ? मैं तो इसे इसके बापू से भी बड़ा साहब बनाउंगी .....'।"[30] शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन में दलित स्त्री के शोषण को जिस तरह से अपनी कहानियों में रेखांकित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने स्त्री के शोषण को अनेक स्तरों पर देखा है। उन्होंने उसके शोषण की वह पीड़ा भी लिखी है, जिसे वह अपने ही परिवार में अपने

लोगों के कारण ही झेल रही है वहाँ शोषक कहीं बाहर नहीं है घर में ही है ,उसका अपना ही कोई है। इसलिए उनकी कहानियों के स्त्री चरित्र बहुत प्रभावशाली है, जिसमें 'तिरिया चरित्तर' की नायिका को भुलाया नहीं जा सकता। उनकी कहानियों में केवल गाँव नहीं बल्कि आम आदमी के जीवन से जुड़ी बातें होती है। ऐसी छोटी सी घटना आम तौर पर लोग अन-नोटिस छोड़ देते हैं। उसे संवेदना के धरातल पर पसारकर शिवमूर्ति एक कहानी खड़ा कर देते हैं। उनकी कहानियों के विषय इतने आम, इतने प्रचलित होते हैं कि सार्वभौमिकता का स्तर छूने लगते हैं। आज भी अख़बार के शीर्षकों में उनकी कहानियों की तमाम घटनाओं को देखा जा सकता है। चाहे विमली के चरित्र पर पुरुष समाज द्वारा लांछन की कोशिश हो, चाहे उसके ससुर को बचाने की बात हो, चाहे सत्ता द्वारा शनिचरी को लूटने की साजिश हो, चाहे एक पिता द्वारा अपने बेटे से पीछा छुड़ाने की बात हो या एक बेटे द्वारा अपने पिता की खोज हो, यह सब आज भी गाँव, समाज की प्रमुख घटनाओं में शामिल है। इनसे उनके धारणाओं को संवेदनाओं को व्यापक स्वीकृति प्राप्त होती है।

शिवमूर्ति के कथा साहित्य में गाँव एक विचार या अवधारणा के बतौर व्यवहृत नहीं हुआ बल्कि एक जिन्दा अहसास के रूप में आया है। शिवमूर्ति ने गाँव के बाहरी आवरण को नहीं भीतरी मर्म को भी पकड़ा है। इस कारण से उनके गाँव जिन्दा लगता है। एक ऐसे दौर में जब शहर लगातार हमारे गाँव को चर रहे हैं, खुद गाँव में रोज अबाध गति से शहरों का उगना जारी है। ऐसे समय में शिवमूर्ति अपनी कहानियों में गाँवों की जिन्दगी बख्शने के लिए कटिबद्ध हैं। 'सिरी उपमा जोग' कहानी के चरित्र और व्यक्तिगत संबंधों से इतर बदलते भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य की पृष्ठभूमि में देखें तो आधुनिक भारत के विकासशील चरित्र की एक आवांतर कथा सामने आती है। गाँव की कोख से निकला नौकरशाह पूंजीवादी शहर की गोद में जा बैठता है। गाँव उसके लिए परेशानी का सबब है। यह अकारण नहीं है कि शिवमूर्ति कहानी के अंत में लिखते हैं कि - "सबेरे उठकर वे देखते हैं - चबूतरे पर 'गाँव' नहीं है। वे चैन की साँस लेते हैं।"[31] यह सर्जनात्मक विरोध है। यही कारण है कि शिवमूर्ति के कथा साहित्य में 'गाँव' की इतनी दमदार और सार्थक उपस्थिति है। शिवमूर्ति एक देशज यथार्थ या ग्रामीण यथार्थ के कथाकार तो हैं हीं साथ ही वे व्यापक अर्थों में भारतीय यथार्थ के कथाकार हैं। वस्तुतः गाँव एक संरचना है, जिसके सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक कई आयाम है। इन आयामों के समुच्य से न सिर्फ उसमें जीवन्तता आती है,

बल्कि उसका स्वरुप भी निर्मित होता है। इस संरचना को उसी बहुआयामितता और जीवन्तता के साथ साहित्यिक संरचना में रूपांतरित कर सकना मामूली काम नहीं है । शिवमूर्ति ने इसे सफलतापूर्वक अंजाम तक पहुँचाया है। उनके हर पात्र चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण, हैसियत के हों, उसके आचरण के मूल में गाँव के स्थानीय समीकरणों की प्रभावशाली उपस्थिति देखी जा सकती है । 'तर्पण' और 'आखिरी छलांग' उपन्यासों में इसे सहजता से देखा जा सकता है। 'कसाईबाड़ा' और 'तिरिया चरित्तर' कहानी में इसे सतह पर और 'अकालदंड ' तथा 'भरतनाट्यम' में इसे सतह के नीचे देखा जा सकता है। गाँव की मानसिकता को सर्वाधिक दक्षता से धारण करने का काम शिवमूर्ति की स्त्रियों ने किया है और उसके बाद इसमें किसी की निर्णायक भूमिका ठहरती है तो वह उनकी कहानियों में आये महत्वाकांक्षी और लोलुप किस्म के चरित्रों की है । 'तिरिया चरित्तर' कहानी के निर्णायक क्षण में जब विमली के सच का सहार झूठों के गिरोह के द्वारा किया जाना तय है। उस क्षण में बाल-विधवा बिरजा अकेली आशा की किरण है। उसका आचरण उस क्षण में देखने लायक है। "बाल विधवा बिरजा बैठी सोच रही थी अगर वह कह दे कि मछली चिखना तो उसी से बनवाया था बिसराम ने । शिवालय से लौटते समय लेते हुए आया था-तो ? अभी सारी पंचायत उलट जाएगी.....लेकिन तब उससे भी पूछा जा सकता है। कितने साल से वह बिसराम का चिखना बनाती रही है ? आगे से चिखना बनाना बंद हो जायेगा सो अलग।"[32] 'तिरिया चरित्तर' की एक बानगी यह भी है। गाँव में अफवाह को हवा देने का काम भले पुरुष करते हों, पर उसके प्रचार-प्रसार का भार महिलाओं के ही जिम्में है।

आज के समय में गाँव उजड़ रहा है, ऐसे विरोध के समय में शिवमूर्ति ने कथा में 'गाँव' को फिर से बसाने का काम किया है। गाँव की बसावट के मूल में शिवमूर्ति ने यों तो बुनावट के पारंपरिक कौशलों का उपयोग किया है । जैसे भाषा के स्तर पर स्थानीयता और आंचलिकता की छोंक, लोकगीतों का तड़का, कहाव और लोकोक्तियों की ध्वजा इत्यादि। जैसे 'सिरी उपमा जोग' कहानी में लालू की अम्मा कहती है कि - "एक गीत सुनाउंगी आपको मेरी माँ कभी-कभी गाया करती थी। फिर बड़े करुण स्वर में गाती रही थी वह, जिसकी एकाध पंक्ति ही अब उन्हें याद है - 'सैतनिया संग रास रचावत, मो संग रास भुलान, यह बतिया कोऊ कहत बटोही, न लगत करेजवा में बान, संवरिया भूले हमें....."[33]

शिवमूर्ति की कहानियों में से पारम्परिक कौशलों को दरकिनार कर दिया जाये तब भी कुछ तत्व है जो खास तौर से उनके यहाँ उपलब्ध है। जैसे गाँव और किसान के पारस्परिक सम्बन्ध को अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है वैसे ही किसान, पशु और प्रकृति की पारस्परिकता को अलग से रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति और पशु जगत का जैसा इस्तेमाल शिवमूर्ति के यहाँ है। वह उन्हें अपने समकालीन रचनाकारों में विशिष्ट बनाता है। शिवमूर्ति के यहाँ पशु मानवीय मूल्यों के सूचकांक के बतौर व्यवहृत होते आयें हैं। उनकी कहानी 'अकालदंड' में इस का उदाहरण है - "पेड़ों के पत्ते सूखकर झड़ चुके हैं या मवेशियों के पेट में चले गए हैं। बकरे-बकरी लोगों के पेट में चले गए हैं और गायें-भैसें बिक चुकी है। जिन्होंने नहीं बेचा उन्हें अब कोई मुफ्त में ले जाने को तैयार नहीं है। लेकिन बाँधकर रखें तो खिलाएँ क्या ? तो गले से 'पगहा' खोलकर हाँक दे रहे हैं लोग – जाओं 'फिरी' कर दिया आज से। 'सुतंत्र' हो।"[34]

ग्रामीण परिवेश का कोई एक केन्द्रीय चरित्र शिवमूर्ति नामक कथा-कीड़ा उठाता है और उसके इर्दगिर्द रेशम का हृदयविदारक कोकून सम्पूर्ण ग्रामीण अंचल की कथा, आख्यान, कहानी, लंबी कहानी या लघु उपन्यास के रूप में बुनता चला जाता है। पाठक उस कथा के साथ बहता हुआ देश के साठ-सत्तर प्रतिशत ग्रामीण समाज में घिरता-धँसता और बंद होता चला जाता है क्योंकि उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ और अंतर्विरोध अपने नंगे यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं। जहाँ जाति-व्यवस्था की गहरी जड़ें मानवीय संबंधों को छिन्न-भिन्न करती दिखाई देती है। जहाँ स्त्री, दलित को गहन यातनाओं और विवशताओं से लगातार जीना पड़ता है। 'कसाईबाड़ा', 'अकालदंड', 'तिरिया चरित्तर' आदि कहानियों में इस यथार्थ को स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। इन कहानियों की स्त्रियाँ विमली, शनिचरी के साथ समाज, कानून, सरकारी तंत्र का व्यवहार और हथकंडे ग्रामीण जीवन का कटू यथार्थ सामने ला कर रख देते हैं। 'कसाईबाड़ा' की शनिचरी की हत्या कर ग्राम प्रधान उसकी ही बेटी को वैश्या बनने पर विवश कर देता है। 'तिरिया चरित्तर' की विमली से उसका ही ससुर अमानवीय व्यवहार करता है और जीवन भर के लिए उसके चरित्र ही नहीं माथे पर भी दाग टांक देता है। 'अकालदंड' की सुरजी या फिर 'केसर-कस्तूरी' की केसर के साथ जो कुछ भी घटित होता है वे समाज के क्रूरतम विकृतियाँ हैं। जिन्हें शिवमूर्ति यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यह सब आजादी के बाद के भारतीय गाँव की कहानियाँ है, जहाँ विकास के नाम पर गाँव का दोहन तो हुआ ही, लेकिन

निचली पायदान पर खड़ा व्यक्ति, व्यक्ति नहीं रह पाता है। जीवन इतना विषाक्त हो जाता है कि साधारण जन के लिए सांस लेना भी दुर्लभ है। पंचायती राज के नाम पर स्त्रियों और दलितों का शोषण आम बात हो गयी है। जिसे शिवमूर्ति अपनी कहानियों में पुरजोर ढंग से उठाते हैं जैसे - "गाँव के नाक कटानेवाली, गाँव की इज्जत में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। अगर आगे थाना-पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग उसे चन्दा करके झेलेंगे लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जाएगा।"[35] इस तरह से गाँव के पंचायती राज में एक गरीब, लाचार स्त्री का शोषण होता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की जर्जरता, अकाल, भुखमरी से उत्पन्न स्थितियाँ अभिशाप के रूप में सामने आती है। यदि 'अकालदंड' कहानी को ही सामने रखकर देखें तो शासन, प्रशासन की तमाम कारगुजारियाँ और अनैतिक्ताएँ, लूट-खसौट, कालाबाजारी का पेशा बन कर सामने आती हैं। इस कहानी में 'सुरजी' के मार्फ़त शिवमूर्ति श्रम संस्कृति का एक विशिष्ट लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन की जटिलताओं और विषमताओं की अभिव्यक्ति में सिद्धहस्त कथाकार हैं। 'तर्पण' में जहाँ वर्ण-संघर्ष है वहीं शिवमूर्ति का यह भी मानना है कि - "रोटी के लिए जो संघर्ष होता है, वह वर्ग-संघर्ष है। जो इज्जत के लिए होता है वह वर्ण-संघर्ष है। इज्जत की लड़ाई, रोटी की लड़ाई से जरुरी ज्यादा है।"[36] 'तर्पण' में ग्रामीण जीवन की भयावहता और सामाजिक जीवन की विसंगतियों को कल्पना के आधार पर दूर बैठकर नहीं समझा जा सकता है। जीवन का जो यथार्थ 'तर्पण' में अभिव्यक्त हुआ है, वह इतना दुखदायी, कटुता से भरा हुआ है जिसे अभिव्यक्ति के स्तर पर जिस तरह से शिवमूर्ति लाते हैं वह आसान नहीं है। उसके लिए सिर्फ लेखन कौशल ही काफी नहीं है। आतंरिक चेतना भी उतनी ही जरुरी है। जिसमें शिवमूर्ति कहीं कमजोर नहीं पड़ते हैं। ग्रामीण जीवन के संत्रास को जिस तरह 'तर्पण' में शिवमूर्ति ने गहनता के साथ उतारा है, वह उनकी सोच और प्रतिबद्धता का ही परिचायक है इसीलिए ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को तथ्यपरकता और पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्त करने में शिवमूर्ति की एक अलग और विशिष्ट पहचान रही है। जीवन के बदले यथार्थ को शिवमूर्ति ने अनुभव की गहनता के साथ समझा है। 'कसाईबाड़ा' के यथार्थ से अलग 'तर्पण' का यथार्थ है। जहाँ रजपतिया के साथ जोर जबरदस्ती के प्रयास होते हैं, तो गाँव के सारे दलित

एकजुट होकर स्थितियों का सामना करते हैं। समाज में आ रहे बदलाव की यह स्थिति शिवमूर्ति की कहानी 'तर्पण में साफ-साफ दिखाई पड़ती है।

शिवमूर्ति की कहानियों को पढ़ते समय उनके स्त्री कथा-पात्रों की मनोदशाओं को हम उनके साथ घटित हो रही घटनाओं के सन्दर्भ में जिस बेचैनी, उत्सुकता व संवेदना के साथ महसूस करते हैं, वह अद्भुत है। किसी भी अन्य कथाकार की कहानियाँ पढ़ते समय ऐसा इतनी ही गहराई से महसूस होता हो, शायद प्रेमचंद की कहानियाँ पढ़ते समय भी नहीं होता है। शिवमूर्ति द्वारा इन कथा-पात्रों के संवादों में खाँटी आम बोल चाल की गँवई अवधी भाषा का इस्तेमाल हुई है। अवध क्षेत्र के गाँवों में बोली जाने वाली ठेठ अवधी में बातचीत करते उनके कथा पात्र हमें एकदम से उस परिवेश में खींच ले जाते हैं, जहाँ के वे रहने वाले हैं। वे उसी तरह बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बातें कहतें हैं, जैसी प्रायः गाँवों में होती है, विशेष रूप से दलित व गरीब तबके के लोगों के टोल-मुहल्लों में, जैसे - "भलमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव। नाही त अबही गोहार लगाए देब त तोहर भद्दरा उतरि जाए।"[37] 'तिरिया चरित्तर' कहानी में विमली कुइसा से कहती है कि - "जेतना काम करेंगे ओतने न मजूरी मिलैगी। तब काहें तोहार छाती फाटत है ? और घड़ी देखे अपनी बहिनी का सिखाओ।"[38] इस तरह के भाषा में अभद्र गालियों, मुहावरों व आक्षेपों का नैसर्गिग व भरपूर अपनाकर इन कथा-पात्रों को यथार्थ के एकदम करीब लाकर खड़ा कर दिया है। कलात्मक आलोचना की दृष्टि से देखा जाए तो शिवमूर्ति एक नया ही सौन्दर्य-शास्त्र गढ़ते नजर आतें हैं और वे अपने स्त्री कथा-पात्रों को उतने ही सुन्दर अथवा दीनहीन रूप में हमारे सामने लाकर खड़ा कर देते हैं, जैसे वे वास्तविक जगत में होते हैं। इन कथा-पात्रों में बाल-विवाह की त्रासदी व कुपोषण तथा गरीबी की शिकार बहुएँ हैं, पत्नियाँ है, माताएँ हैं, वृद्धाएँ हैं। बाल-विवाह की प्रथा तो शिवमूर्ति की ग्रामीण जीवन का सबसे बड़ा कारक-तत्व है जिसका उल्लेख वह 'तिरिया चरित्तर', 'सिरी उपमा जोग' व 'भरतनाट्यम' जैसी कहानियों में बखूबी करते हैं। 'तिरिया चरित्तर' की विमली माई से प्रश्न करती है - "क्या जरुरत थी बचपन में ही किसी के गले से बाँध देने की ?"[39] वह पराई अमानत को सम्हालते-सम्हालते किशोरावस्था से लेकर जवानी तक कदम-कदम पर संघर्ष से गुजरती है और बाद में अपने ही ससुर द्वारा छली जाती है - "धोखा ! छल ! कहाँ-कहाँ से किन-किन खतरों से बचाती आई थी वह परायी अमानत ! कितने बीहड़ ? कितने जंगल ? कितने जानवर? कितने

शिकारी ? और मुकाम तक सुरक्षित पहुँचकर भी लुट गई वह ! मेंड़ ही खेत खा गई छल से ।"[40] गाँव के स्तर पर रोजगार के अभाव में रोजी-रोटी के लिए घर से पुरुषों का अकेले ही परदेस या महानगरों की ओर विस्थापित हो जाना भी स्त्रियों के शोषण का एक बड़ा कारण बनता है जो शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से बखूबी से प्रस्तुत किया है।

शिवमूर्ति ने त्रिशूल, तर्पण और आखिरी छलांग तीन उपन्यास भी लिखे हैं। ये तीनों उपन्यास उनकी कहानियों को व्यापक बनाती हुई वैचारिक श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। त्रिशूल में साम्प्रदायिकता-धार्मिक कट्टरता को उकेरने की कोशिश की गई है और जातिवाद के घातक प्रभावों का वर्णन है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता का यह त्रिशूल महमूद की छाती में कम हमारे ग्रामीण समाज की छाती में ज्यादा धँसा हुआ है। असहिष्णुता का जो रंग बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद सोची-समझी साजिश के तहत चढ़ाया गया उसने ग्रामीण परस्परता की बखिया उधेड़ कर रख दी है। उपन्यास अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता पर ध्यान आकृष्ट करता है। चुटीले संवादों के सहज अंदाज से शिवमूर्ति पाठक की संवेदना को झकझोरना चाहते हैं जैसे- "अरे आप चार-पांच बार मुसलमान-मुसलमान कहें फिर अपना मुँह सूंघे। कितना बदबू करने लगता है।"[41] महमूद के माध्यम से पूरे समुदाय के प्रति घृणा का भाव जो आज सच्चाई के साथ गाँव में विद्यमान है उसी को शिवमूर्ति आवाज देते हैं। 'आखिरी छलांग' में पूंजीवादी वर्चस्व के प्रभाव को ग्रामीण सामाजिक संरचना पर बखूबी वर्णित किया गया है। परंपरागत समाज में शान से रहने वाला किसान पूँजीवादी शक्तियों से संघर्ष नहीं कर पाता, वह टूटता-बिखरता रहता है। पूँजीवाद के प्रभाव से क्रमशः ग्रामीण जीवन के बिखराव को शिवमूर्ति ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। गाँव पूंजीवादी समाज के हाशिए पर पड़ा रहा है शिवमूर्ति ने इन्ही गाँव को लेकर यह उपन्यास लिखा है।

इस प्रकार शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की जर्जरता, अकाल, भुखमरी अपने यथार्थ रूप में दर्ज हुई दिखाई पड़ती है। जिसे उनकी कसाईबाड़ा, अकालदंड, तिरिया चरित्तर आदि कहानियाँ बड़े मुखर रूप में प्रस्तुत करती हैं। शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन में दलित, स्त्री, के शोषण को जिस तरह से अपनी कहानियों में रूपांकित किया हैं, वह अत्यंत दुर्लभ है। उनकी कहानियों में केवल गाँव ही नहीं बल्कि आम आदमी के जीवन से जुड़ी बाते भी होती हैं।

संदर्भ :

1. Charles H. Cooley, Social organization, Charles Scribner's Sona. New York.1909, Page no.11.
2. J.H. Huttom, caste in India; Hs Nature, Function and origin; Oxford University, press Bombay 1916, p. no. 50.
3. F.A.H. Blunt, The caste system y Northern India, Oxford University Press, Landon 1931, page no.4.
4. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 9
5. वही, पृ. सं. 26
6. वही, पृ. सं. 99
7. लमही, सं. विजय राय,अक्टूबर-दिसम्बर, 2012 ,पृ. सं.162
8. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 121
9. लमही, सं. विजय राय, अक्टूबर-दिसम्बर, 2012, पृ. सं. 42
10. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 8
11. वही, पृ. सं. 56
12. वही, पृ. सं. 56
13. वही, पृ. सं. 138
14. वही, पृ. सं. 139
15. वही, पृ. सं. 122
16. वही, पृ. सं. 34
17. वही, पृ. सं. 34
18. वही, पृ. सं. 62
19. वही, पृ. सं. 10
20. वही, पृ. सं. 12
21. तर्पण, शिवमूर्ति, पृ. सं. 8-9

22. नया ज्ञानोदय, सं. रवीन्द्र कालिया, अंक-120 फरवरी, 2013, पृ. सं. 71

23. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 70

24. वही, पृ. सं. 138

25. वही, पृ.सं.26

26. वही, पृ. सं.86

27. वही, पृ. सं.34

28. वही, पृ. सं.108

29. वही, पृ. सं.123

30. वही, पृ. सं.58

31. वही, पृ. सं.59

32. वही, पृ. सं.119-120

33. वही, पृ. सं.57

34. वही, पृ. सं.25

35. वही, पृ. सं.121

36. तर्पण, शिवमूर्ति, पृ. सं. 26

37. केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृ. सं. 34

38. वही, पृ. सं. 82

39. वही, पृ. सं. 99

40. वही, पृ. सं. 110

41. त्रिशूल, शिवमूर्ति, पृ. सं. 48

उपसंहार

समकालीन कहानियों में परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं से गुजरते हुए शेष समाज के साथ ही मुख्यधार के अन्दर और बाहर हाशियो की जिन्दगी व्यतीत कर सामाजिक समूहों की चेतना को साफ-साफ देखा जा सकता है। समकालीन हिन्दी कहानियों में जो चित्रित समाज है वह गांवों और शहरों में मुख्यधार के अन्दर और बाहर बेहतर जीवन के लिए संघर्षरत किसानों और मजदूरों की जिन्दगी के यथार्थ का चित्रण किया गया है। समकालीन हिन्दी कहानी अपने यथार्थ बोध, भाव-व्यंजना, मूल्य संक्रमण, नयी मूल्यों की स्थापना से प्रभावित होती हुई आगे बढ़ी है। हिन्दी कहानी को देखें तो आज भी समकालीन के दिशा बोध को ग्रहण करती दिखाई देती है। समकालीन कहानी में जीवन का कोई भी अंग अनुछुआ नहीं रहा है। जो आज के दौर की कहानियों में बुनियादी यथार्थ की पकड़ तथा मानवीय मूल्यों की पक्षधरता की तीव्र आकांक्षा झलकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति से देखे तो आज तक हिन्दी कहानियों में सामाजिक धार्मिक तथा राजनीतिक जो परिवर्तन हुए हैं उन सभी के बीच से कहानीकार गुजर चुका है, जिसे समाज के साथ हर कथाकारों ने भोगा है। कोई भी संदेह नहीं है कि वर्तमान के कहानी ने सांस्कृतिक विघटन के कुहासे तथा मौतिक और आर्थिक परिवर्तन को सहा है और आधुनिक युग की जटिल मानव-चेतना को आत्मसात किया है। रचना में जो भी जाता है वह मानवीय जीवन का सन्दर्भ है। कथाकार इसी को अपने-अपने प्रकार से अनुरूप पुनर्सृजन करके हर रचनाकार अपने को अभिव्यंजित करता है। जो कुछ जीता है, जो कुछ देखता है या जिसके लिए अनवरत संघर्ष करता है, यही सब का चित्रण समकालीन कहानियों में मिलता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में समकालीन समाज, राजनीति, गरीबी, जातिवाद छल प्रपंज और शोषण के अनेकानेक रूपों से हम वाकिफ हो जाते हैं। उनकी कहानियों में भारतीय सामाजिक जिन्दगी में दिहाड़ी, मजदूरों और उनमें भी स्त्री जीवन का संघर्ष कैसा है, उस संघर्ष का समाजशास्त्र क्या है ? जब एक स्त्री मजदूर बनती है, तो उसका सिर्फ़ आर्थिक शोषण ही नहीं होता है, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी उसका शोषण और दमन होता है। इस को लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों में अवध के लोक समाज की गहरी अनजानी किन्तु मार्मिक जीवन-झाँकियों का चित्रण देख ने को मिलता है। उनकी कहानी अवध के पूरे गाँव समाज का साक्षात्कार कराता है जिसमें जीवन के विभिन्न रंग और दृश्य हैं। चारित्रिक विविधताएँ हैं, विश्वस और सन्देह हैं, पौरुष और

कर्मठता है, आत्माभिमान है तो परम्परागत मूल्यों को जीने के विलक्षण दृश्य हैं। ऐसा करते हुए वे गांवों के संयुक्त परिवारों की उन चालों पर भी नजर रखे रहते हैं जो उस सामाजिक गठन के प्रारूप या ढाँचे को बिखरने का कारण बन रही हैं।

प्रथम अध्याय, 'समकालीन कहानी और शिवमूर्ति : स्वरूप विवेचन' का अध्याय करने पर मिला कि समकालीनता काल विशेष में होने वाले परिवर्तन को अभिव्यक्ति करती है। समकालीनता में समसामयिक बोध ऐतिहासिक दृष्टि सक्रियता, द्वंद्वात्मकता आदि तत्व विधमान रहते हैं। समकालीन कहानीकारों की विशेषता इस बात से है कि आज के कहानीकार परिवेश की समस्याओं से सीधा जूझता हुआ स्वयं अपने को उन स्थितियों के बीच खड़ा पाता है। इन्हीं करणों से आज वह परिवेश से प्रेम कथाएँ नहीं ढूंढ़ता अपितु गहरे जाकर उसकी समस्याओं से भिड़ता हुआ जीवन के उन यथार्थ को वाणी देता है। परिवेश से आज कहानीकार इतने गहरे से जुड़ा है कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को नई दृष्टि से उठाया गया है। साथ ही वह विसंगतियों और अंतर्विरोधों के प्रति क्रांतिकारी कदम भी उठाता है। समकालीन कहानी इन्ही विचारों को लेकर अपने समय की विसंगतियों को बदलने के लिए पूरी गंभीरता और विविघता के साथ चित्रित कर रही है। समकालीन कहानियाँ शोषण और अन्याय के विरुद्ध आम आदमी की चेतना को मुखरित करती हैं। आज की कहानियों में नारी-जीवन को देखे तो आज तक का एक सुस्थापित सत्य यह है कि नारी का पति के प्रति एकनिष्ठता का भाव रहा है। चाहें पति के जीवनकाल में हो या मृत्यु के बाद परन्तु समकालीन कहानी में नारी इस सत्य की स्थिति को अनेक कोणों से चुनौती देती हुई नजर आती है।

समकालीन कहानीकारों में से अधिकांश मध्यवर्गीय हैं। इसलिए इन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं और सोच को अपनी कहानियों में प्रमुखता दी है। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विड़म्बना यह है कि वह आर्थिक रूप से कमजोर है। आज आम आदमी के अन्दर जो गुस्सा और आक्रोश पनपने का मुख्य कारण आर्थिक तंगहाली का दुखदर्द ही है। वह अपने जीवन की आवश्यकताओं के लिए तथा उसे पूरा करने के लिए जुटा हुआ है परन्तु फिर भी वह असमर्थ है। जिसका असर उसके पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। समकालीन कहानी में ग्रामीण जीवन को देखे तो आज भी उसी हालत में है जैसे प्रेमचंद के समय में था। प्रेमचंद ने जिने समस्याओं को अपने साहित्य में दिखाया था जैसे बचपन में शादी हो, गाँव की ऊँची जातियों द्वारा निचली जातियों का शोषण हो यही सब आज भी

किसी-न-किसी रूप में ग्रामीण समाज में मौजूद है। समकालीन कहानीकारों में शिवमूर्ति का स्थान प्रमुख है। उनकी कहानियाँ, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, विसंगतियों को दर्ज करती चलती हैं। शिवमूर्ति का साहित्य ग्रामीण स्त्रियों को केन्द्रीयता प्रदान करते हुए उनके संघर्षो को व्यक्त करता है। 'तिरिया चरित्तर', 'कसाईबाड़ा', 'अकालदण्ड', 'केशर-कस्तूरी' जैसी कालजयी कहानी इस तथ्य का प्रमाण हैं।

द्वितीय अध्याय, 'समकालीन हिन्दी कहानी एवं समाज' का अध्याय करने पर मिलता है कि समकालीन समाज एक अजीब स्थिति में है। वह आधुनिकता और परंपरा दो विरोधी पाटों में उलझा हुआ है। परम्परा और आधुनिता दोनों उसे अपनी अपनी ओर विपरीत दिशाओं में खींच रही है। समकालीन समाज अंतर्विरोधी का पिटारा है जिसके कुछ पहलू अत्यंत जटिल हैं। जिसमें राजनीतिक प्रणाली की असमान्यताएं भी विचारणीय हैं। आज अगर संस्कृति को देखा जाए तो सांस्कृतिक अस्मिताओं का निर्माण धर्म, क्षेत्र तथा जातियता के आधार पर मिलता हैं। धर्म के अनुयायियों में विश्वास, उपासना तथा कर्मकांड के अलवा और कोई विशेष समानता नहीं दिखायी देती। समकालीन समाज एक परिवर्तन के संवेगात्मक उद्वेग से गुजर रहा है और दुविधाओं एवं विडम्बनाओं की एक श्रृंखला से मुठभेड़ कर रहा है। समकालीन कहानी नई कहानी से अलग है क्येंकि जहाँ नई कहानी में अकेलापन, प्रेम, मोह, संबंधों के टूटन आदि की पहचान की चिंता है, वहीं समकालीन कहानी में सामाजिक सामुदायों एवं समूहों द्वारा अपने वजूद के लिए किए जा रहे संघर्षों को देखने एवं उसे ऐतिहासिक दृष्टि से व्यखायायित करने की चेतना दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि समकालीन कहानी में व्यक्ति और समाज के साथ उसके संबंधों की बजाय, सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अंदर और बाहर आस्तित्व रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष की चेतना अधिक दिखाई पड़ती है। समकालीन कहानी में यथार्थ के निर्मित में जितने हाशिये के समाज की भूमिका दिखाई पड़ती है। समकालीन कहानियों में शेष समाज के साथ मुख्यधारा के अंदर और बाहर हाशिये की जिंदगी व्यतीत कर सामाजिक समूहों की चेतना को साफ-साफ देखा जा सकता है। साथ ही आधुनिक समाज में गांवों और शहरों में मुख्यधारा के अंदर और बाहर बेहतर जीवन के लिए संघर्षरत किसानों और मजदूरों की जिन्दगीं के यथार्थ का चित्रण है। समकालीन कहानियों में आर्थिक संकट से उत्पन्न घुटन, यौन भावनाओं से उत्पन्न कुंठा, पति-पत्नी के संबंधों में व्याप्त कुंठा का चित्रण मिलता है। समकालीन

कहानीकारों ने अपने कहानियों में ग्रामीण जीवन के जटिल अन्तर्विरोध को भी रूपांकित किया है। समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ जहाँ निम्न मध्यवर्ग के दुःख, दर्द, संघर्ष को उकेरती है वहीं जनसामान्य को सामाजिक बदलाव के लिए जागरूक भी करती है।

'शिवमूर्ति की कहानियों में अभिव्यक्त समाज के विविध आयाम' तीसरे अध्याय में जाति व्यवस्था तथा स्त्री-पुरुष संबंधों की गहन पड़ताल की गई है। जहाँ शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ तथा अन्तर्विरोध अपने नग्न यथार्थ रूप में मौजूद है। वहीं जाति की गहरी जड़े मानव के संबंधों को तार-तार करती नजर आती हैं। दलित, स्त्री को बहुत सारे यातनाओं और विवशताओं से लगातार जीना पड़ता है। 'अकालदंड', 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर' कहानियों में इस यथार्थ को स्थल पर स्वयं शिवमूर्ति खड़े दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों में गाँव के दुरूह जीवन से लेकर सुख-सुविधाओं से भरे शहरी जीवन और छोटी-मोटी नौकरी से लेकर राज्य सरकार की अफसरी तक के सफर के अनुभवों का उनके पास अकूत भंडार है। उनकी कहानी संग्रह 'केशर-कस्तूरी' इन रूपों को बखूबी चित्रण करती है।

चतुर्थ अध्याय, 'शिवमूर्ति की कहानियों में चित्रित समाज का वैशिष्ट्य' विषय में ग्रामीण जीवन की जर्जरता, अकाल, भुखमरी अपने यथार्थ रूप में दर्ज हुई दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियों में जाति व्यवस्था के साथ दलित अस्मिता भी जुडी हुई है। उनकी कहानियों में स्त्री तथा दलितों की पीड़ा बड़े यथार्थ रूप में स्थान पाती है।साथ ही उनकी कहानियों में राजनीतिक का भी चित्रण देखने को मिलता है। उनकी कहानी 'कसाईबाड़ा' ग्रामीण राजनीतिक रूपों को बखूबी चित्रित करती है। शिवमूर्ति की कहानियों में किसानों और मजदूरों की भूख ऋणग्रस्तता, सामंती समाज द्वारा शोषण-दमन जैसी आर्थिक समस्याओं को केंद्र में रखकर उन्होंने कृषक मजदूर समाज द्वारा किए जा रहे प्रतिरोध और संघर्ष को उनके जिंदगी के यथार्थ के रूप में चित्रित किया है। उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का प्रमाणिक चित्र मिलते हैं। उनके यहाँ अवध की ग्रामीण संस्कृति का बहुरूपी और गहरा अंकन मिलता है, परंतु उनके यहाँ ग्रामीण जीवन केवल प्रकृति और ऋतुओं पर केन्द्रित न होकर मुख्य रूप से ग्रामीण जनों की कठिन स्थिति और संघर्षों के माध्यम से व्यक्त होती है। शिवमूर्ति के कथा साहित्य में गाँव एक विचार या अवधारणा के बतौर चित्रित नहीं हुआ बल्कि एक जिन्दा एहसास के रूप में आया है। उन्होंने गाँव के बाहरी आवरण को ही नहीं भीतरी मर्म को भी पकड़ा है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ समाज के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करती हैं। जहाँ उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का रंग दिखाई पड़ता वहीं गाँव की विविध समस्यों को अपने भीतर समेटे हुए भी दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियों में आधुनिक भारतीय गाँवों और कस्बों को देखा जा सकता है। शिवमूर्ति की कहानियों के अधिकांश स्त्री कथा-पात्र गरीबी, बाल-विवाह के कारण उत्पन्न सामाजिक विषमताओं व पुरुष-समाज के आचरण से त्रस्त हैं और वे यथावसर इन सबके प्रति विद्रोह करते नजर आते हैं। प्रतिरोध के बुलंद स्वर उठाना और शारीरिक रूप से भी अन्याय के विरुद्ध लड़ना, इन कथा-पात्रों का सामान्य स्वभाव है। शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण जीवन में हो रहे जातिगत भेद-भाव भी देखने को मिलता है जहाँ उच्च जाति के लोग निम्न जाति पर तरह-तरह के अन्याय करते नजर आते हैं। भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी जाति के नाम पर शोषण होता है जिसे शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों के माध्यम से बखूबी चित्रित किया है। गाँवों में मुख्य रूप से आर्थिक समस्या होती है जिनका वर्णन शिवमूर्ति की कहानियों में देखने को मिलता है उनकी कहानियों में आर्थिक अवस्था से त्रस्त परिवारों का वर्णन मिलता है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में पारिवारिक विघटन का वर्णन किया है जो आज के समाज की एक प्रमुख समस्या है। शिवमूर्ति की कहानियों को देखें तो आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण का प्रतिरोध करना ही उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य अथवा केन्द्रीय भाव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ:

1. शिवमूर्त, केशर-कस्तूरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2015 ई.

सहायक ग्रन्थ:

1. अवस्थी, देवीशंकर, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1977 ई .
2. इब्राहीम, शरीफ, कई सूरतों के बीच : कथाहीन, धरती प्रकाशन, दरियागंज, 1981 ई.
3. उपाध्याय, विश्वंभभरनाथ, समकालीन हिन्दी कहानी की भूमिका,वाणी प्रकाशन,1978 ई.
4. चोपड़ा, सुदर्शन, जिनमें मकान दहते है, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 1986 ई.
5. जोशी, पूरनचंद्र, भारतीय ग्राम, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1966 ई.
6. तिवारी रामचंद्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1933 ई.
7. दुबे, श्यामाचरण, भारतीय समाज, नेशनल बुक, ट्रस्ट, इंडिया 2009 ई.
8. दोषी, एस.एल, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिकेशन, जयपुर, 1973 ई.
9. नरेन्द्र, मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1978 ई.
10. पटेल, शवेर भाई, ग्राम संस्कृति का अगला चरण, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद 1962 ई.
11. बक्षी, रमेश, एक अमूर्त तकलीफ, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई.
12. भ्रमर, रवीन्द्र, समकालीन हिन्दी कविता, राजेश प्रकाशन, 1972 ई.
13. भंडारी, मन्नू, यही सच है, वाणी प्रकाशन, नई देल्ली, 1966 ई.
14. माहेश्वर, माहेश्वर की प्रतिनिधि कहानियाँ, प्रदीप प्रकाशन, कलकत्ता 1971 ई.
15. मधुरेश, हिन्दी कहानी: अन्तरंग पहचान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 ई.
16. राय, गोपाल, हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई.
17. वर्मा, रामचंद्र, मानक हिन्दी कोष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012 ई.

18. शैलजा, समकालीन हिन्दी कहानी बदलते जीवन सन्दर्भ, वाणी प्रकाशन, 2014 ई.
19. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011 ई.
20. शिवमूर्ति, मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 ई.
21. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई.
22. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली 2010 ई.
23. से. रा. यात्री, रिश्ते, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989 ई.
24. सिंह, वैभव, शाताब्दी का प्रतिपक्ष, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2013 ई.
25. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012 ई.
26. Charles H. Cooley, social organization, Charles Scribner's Sona, New York 1909.
27. F.A.H. Blunt, the caste system Northern India, Oxford university press, London, 1931.
28. J.H. Hutton, caste in India, HS Nature, Function and origin, Oxford University, press Bombay 1916.
29. Maciver and Page, Society, Macmillan and Company, London, 1968.

पत्रिका

1. अपेक्षा, सं. रमेश यादव, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून 2012 ई.
2. इंडिया इनसाइड, सं.अरुण सिंह, साहित्य वार्षिक 2016 ई.
3. नया ज्ञानोदय, सं.रवीन्द्र कालिया, अंक 120, फरवरी 2013 ई.
4. मंच, सं.मयंक खरे, जनवरी-मार्च -2011 ई.
5. लमही, सं. विजय राय, अक्टूबर-दिसम्बर 2012 ई.
6. संवेद-73-75, सं. किशन कालजयी, फरवरी-अप्रैल- 2014 ई.

Web:

1. Http:/lamhipatrika.blogsbot.oct.dec2012shivmurti.blogspot:n/2011/10/blog.post-21.html.